

18 JUL 1972

82

84
65

~~203/A.~~

203

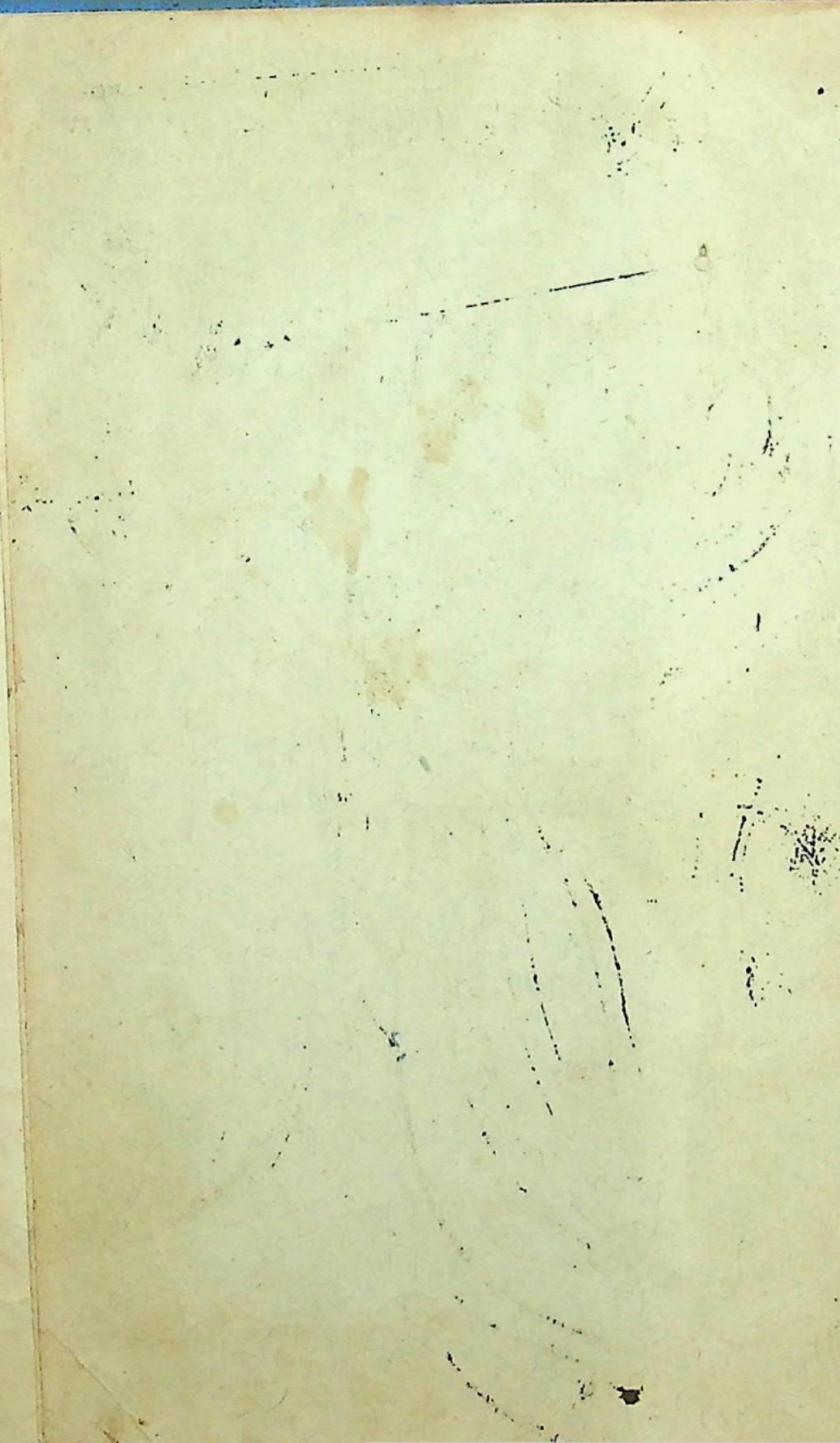
4





विवलेष





चित्रलेखा

Chitralekha 4

Sone Nag 6 class

203/
A

लेखक
१८८६

श्री भगवतीचरण वर्मा



प्राप्ति की दिन
तिथि, जो दिन

✓
215215



ग्रन्थ-संख्या--७७
प्रकाशक तथा विक्रेता
भारती-भंडार
लीडर प्रेस, प्रयाग

दस्ताँ संस्करण
सं० २००९ वि०

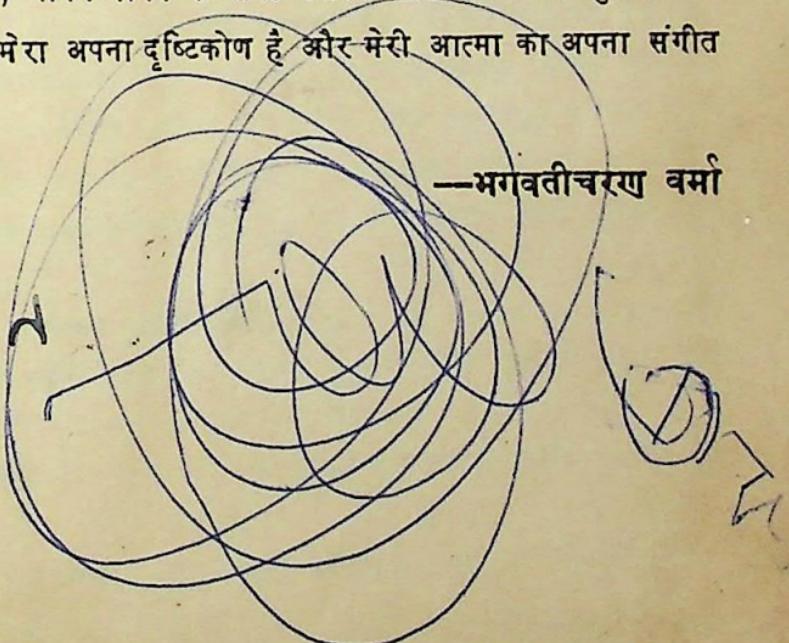
मूल्य ३)

891.43
Bh 49Ch

मुद्रक—
बी० पी० ठाकुर
लीडर प्रेस, प्रयाग

मेरी चित्रलेखा में और अनातोले फ्रांस की थाया में उतना ही
अन्तर है जितना मुझमें और अनातोले फ्रांस में। चित्रलेखा में एक
समस्या है, मानव-जीवन के तथा उसकी अच्छाइयों और बुराइयों के
देखने का मेरा अपना दृष्टिकोण है और मेरी आत्मा का अपना संगीत
भी है।

—भगवतीचरण वर्मा



के लिए बड़ा है कि वह संसार की दृष्टिकोणीय
का न लगायें। वह यह जीवन की दृष्टिकोणीय का लिए
करना चाहता है कि वह जीवन की दृष्टिकोणीय का लिए
जीवन की दृष्टिकोणीय का लिए जीवन की दृष्टिकोणीय का लिए

। १७८

प्रश्न उत्तर



उपक्रमणिका

श्वेतांक ने पूछा, “और पाप ?”

महाप्रभु रत्नाम्बर मानो एक गहरी निद्रा से चौंक उठे । उन्होंने श्वेतांक की ओर एक बार बड़े ध्यान से देखा, “पाप ? बड़ा कठिन प्रश्न है वत्स ! पर साथ ही बड़ा स्वाभाविक ! तुम पूछते हो पाप क्या है !” इसके बाद रत्नाम्बर ने कुछ देर तक कोलाहल से भरे पाटलिपुत्र की ओर, जिसके गगनचुम्बन करने का दम भरनेवाले ऊँचे-ऊँचे प्रासाद अरुणिमा के धुंधले प्रकाश में अब भी दिखलाई दे रहे थे, देखा । “हाँ, पाप की परिभाषा करने की मैंने भी कई बार चेष्टा की है, पर सदा असफल रहा हूँ । पाप क्या है, और उसका निवास कहाँ है, यह एक बड़ी कठिन समस्या है जिसको आज तक नहीं सुलझा सका हूँ । अविकेल परिश्रम करने के बाद, अनुभव के सागर में उतराने के बाद भी जिंस समस्या को नहीं हल कर सका हूँ उसे किस प्रकार तुम को समझाऊँ ?

रत्नाम्बर ने रुक्कर फिर कहा, “पर श्वेतांक, यदि तुम पाप जानना ही चाहते हो तो तुम्हें संसार ढूँढ़ना पड़ेगा । इसके लिए यदि तैयार हो तो सम्भव है पाप का पता लगा सको ।”

श्वेतांक ने रत्नाम्बर के सामने मस्तक नमाकर कहा, “मैं प्रस्तुत हूँ ।”

“और कंदाचित् तुम भी पाप को ढूँढ़ना चाहोगे ?” रत्नाम्बर ने विशालदेव की ओर देखा ।

विशालदेव ने भी रत्नाम्बर के सामने मस्तक नमाते हुए कहा, “महाप्रभु का अनुमान उचित है !”

रत्नाम्बर का मुख प्रसन्नता से चमक उठा । “इसके पहिले कि. मैं तुम लोगों को संसार में भटक कर अनुभव प्राप्त करने को छोड़ दूँ, तुम्हें परिस्थितियों से भिज्ज करा देना आवश्यक होगा । इस नगर के दो महान् भावों से मैं यथेष्ट परिवित हूँ, और इस कार्य को पूरा करने के लिए तुम लोगों को इन दोनों की सहायता की आवश्यकता होगी । एक योगी हूँ और दूसरा भोगी—योगी का नाम है कुमारगिरि, और भोगी का नाम है वीजगुप्त । तुम दोनों के जीवन को इनके जीवन-स्रोत के साथ-साथ ही बहता पड़ेगा ।”

दोनों शिष्यों ने एक साथ उत्तर दिया “स्वीकार है !”

“विशालदेव ! तुम ब्राह्मण हो और तुम्हारी ध्यान तथा आराधना पर अनुरक्ति है । इसलिए तुम्हें कुमारगिरि का शिष्य बनना उचित होगा । और श्वेतांक ! तुम क्षत्रिय हो, तुम्हें संसार में अनुरक्ति है इसलिए तुम्हें वीजगुप्त का सेवक होना पड़ेगा ।”

दोनों शिष्यों ने एक साथ उत्तर दिया “स्वीकार है !”

“तुम दोनों के मार्ग निर्धारित हो चुके । अब रहा मैं । तुम लोग मेरी चिन्ता न करो । जीवन में अनुभव की उतनी ही आवश्यकता होती है जितनी उपासना की । तुम अनुभव प्राप्त करो, और मैं तपस्या करूँगा । आज से एक वर्ष बाद तुम दोनों मुझसे यहाँ पर मिलोगे । और उस समय फिर से हम अपने निर्धारित कार्य-क्रम पर चल सकेंगे ।”

“पर एक बात याद रखना । जो बात अध्ययन से नहीं जानी जा सकती है उसको अनुभव से जानने का प्रयत्न करने के लिए ही मैं तुम दोनों को संसार में भेज रहा हूँ । पर इस अनुभव में तुम स्वयम् ही न वह जाओ इसका ध्यान रखना पड़ेगा । संसार की लहरों की वास्तविक गति में तुम दोनों बहोगे । उस समय यह ध्यान रखना पड़ेगा कि कहीं ढूँब न जाओ ।”

श्वेतांक ने विशालदेव की ओर देखा और विशालदेव ने श्वेतांक की ओर ।

रत्नाम्बर ने कुछ देर तक मौन रहकर फिर कहना आरम्भ किया, “जिन परिस्थितियों में तुम जा रहे हो उनका पहले से ही परिचय करा द् । कुमारगिरि योगी है, उसका दावा है कि उसने संसार की समस्त वासनाओं पर विजय पा ली है । संसार से उसको विरक्ति है, और अपने मतानुसार उसने सुख को भी जान लिया है; उसमें तेज है और प्रताप है; उसमें शारीरिक बल है और आत्मिक बल है । जैसा कि लोगों का कहना है, उसने ममेत्व को वशीभूत कर लिया है । कुमारगिरि युवा है, पर यौवन और विराग ने मिलकर उसमें एक अलौकिक शक्ति उत्पन्न कर दी है । संयम उसका साधन है और स्वर्ग उसका लक्ष्य । विशालदेव ! वही कुमारगिरि तुम्हारा गुरु होगा ।

“और श्वेतांक ! बीजगुप्त भोगी है; उसके हृदय में यौवन की उमंग है और अँखों में मादकता की लाली । उसकी विशाल अट्टालिकाओं में भोग-विलास नाचा करते हैं; रत्न-जटित मंदिरा के पात्रों में ही उसके जीवन का सारा सुख है । वैभव और उल्लास की तरंगों में वह केलि करता है, ऐश्वर्य की उसके पास कमी नहीं है । उसमें सौन्दर्य है, और उसके हृदय में संसार की समस्त वासनाओं का निवास । उसके द्वार पर मातंग झूमा करते हैं, उसके भवन में सौन्दर्य के मद से मतवाली नर्तकियों का नृत्य हुआ करता है । ईश्वर पर उसे विश्वास नहीं, शायद उसने कभी ईश्वर के विषय में सोचा तक नहीं है । और स्वर्ग तथा नरक की उसे कोई चिन्ता नहीं । आमोद और प्रमोद ही उसके जीवन का साधन है तथा लक्ष्य भी है । उसी बीजगुप्त का तुम्हें सेवक बनना पड़ेगा । श्वेतांक ! स्वीकार है ?”

“महाप्रभु की आज्ञा शिरोधार्य है ।” श्वेतांक एक बार कल्पना से परे ऐश्वर्य की थाह लेना चाहता था ।

“और विशालदेव, तुम्हें स्वीकार है ?”

“महाप्रभु की आज्ञा शिरोधार्य है ।” विशालदेव एक बार यौवन और विराग के मिश्रण से उत्पन्न शक्ति का महर्ख जानना चाहता था ।

“तो फिर ऐसा ही हो ।” इतना कहकर रत्नाम्बर उठ खड़े हुए ।
दूसरे दिन कुटी खाली पड़ी थी । गुरु साधना के शुष्क क्षेत्र में
और शिष्य अथाह संसार में निकल पड़े थे ।

प्रथम परिच्छेद

छलकते हुए मदिरा के पात्र को चित्रलेखा के मुख से लगाते हुए वीजगुप्त ने कहा, “चित्रलेखा ! जानती हो जीवन का सुख क्या है ?”

चित्रलेखा की अधकुली आँखों में मतवालापन था और उसके अरुण करोलों में उल्लास था । यौवन की उमंग में सौंदर्य किलोलें कर रहा था, आलिंगन के पाश में वासना हँस रही थी । चित्रलेखा ने मदिरा का एक धूट पिया—इसके बाद वह मुसकराई । एक क्षण के लिए उसके अधरों ने वीजगुप्त के अधरों से मौन भाषा में कुछ बात कही, फिर धीरे से उसने उत्तर दिया, “मस्ती !”

उस समय प्रायः आधी रात बीत चुकी थी । वीजगुप्त का भवन सहस्रों दीप-शिखाओं से आलोकित हो रहा था, द्वार पर शहनाई में विहाग बज रहा था । केलिभवन में नगर की सर्व-सुन्दरी नर्तकी के साथ सामन्त वीजगुप्त यौवन की उमंग में निमग्न था, और बाहर गहरे अन्धकार में सारा विश्व ।

वीजगुप्त हँस पड़ा, “सोच रहा हँस चित्रलेखा, यौवन का अंत क्या होगा ?”

चित्रलेखा भी हँस पड़ी, पर हँसी क्षणिक थी; अचानक ही वह मीठी और उल्लास से भरी हँसी, वेदना-मिथित गम्भीरता में परिणत हो गयी । उसने भी शायद कभी इसी प्रश्न का उत्तर पाने की चेष्टा की थी, पर प्रश्न इतना भयानक था कि वह उस पर अधिक देर तक सोच न सकी थी । उसका सर धूमने लगा था और इसके बाद मदिरा के पात्र में उस समय के लिए उसने उस दुःखद विचार को डुबो दिया था । आज एकाएक फिर उसी प्रश्न को सुनकर वह चौंक उठी, “जीवित मृत्यु !”

“जीवित मृत्यु ! नहीं, यह असम्भव है। यौवन का अन्त है एक अज्ञात अन्धकार, और उस अज्ञात अन्धकार के गर्त में क्या छिपा है, वह न तो मैं जानता हूँ, और न उसके जानने की कोई इच्छा ही है। भूत और भविष्य, ये दोनों ही कल्पना की चीजें हैं जिनसे हमको कोई प्रयोजन नहीं, वर्तमान हमारे सामने है, और वह.....” बीजगुप्त रुक गया, शायद वह आगे के शब्दों को ढंडने लगा था।

“और वह उल्लास विलास है, संसार का सारा सुख है, यौवन का सार है।” चित्रलेखा ने हँसते हुए वाक्य पूरा कर दिया।

बीजगुप्त ने चित्रलेखा को आलिगन-पाश में लेकर कहा, “तुम मेरी मादकता हो !”

चित्रलेखा ने उत्तर दिया—“और तुम मेरे उन्माद हो !”

चित्रलेखा वेश्या न थी, वह केवल नर्तकी थी। पाटलिपुत्र की असाधारण सुन्दर नर्तकी का वेश्यावृत्ति स्वीकार न करना, यह बात स्वयम् ही असाधारण थी, पर उसके कारण थे, और उन कारणों का उसके गत जीवन से गहरा सम्बन्ध था।

चित्रलेखा ब्राह्मण विधवा थी। वह विधवा उस समय हुई थी जिस समय उसकी अवस्था अठारह वर्ष की थी। विधवा हो जाने के बाद संयम उसका नियम हो गया था। पर बात वैसी ही अधिक दिनों तक न रह सकी। एक दिन उसके जीवन में कृष्णादित्य ने प्रवेश किया। कृष्णादित्य क्षत्रिय और शुद्रा का वर्णसंकर पुत्र था। कृष्णादित्य एक सुन्दर नवयुवक था, और उसकी सुन्दरता में एक विशेष प्रकार का आकर्षण था। कृष्णादित्य ने विधवा चित्रलेखा की तपस्या भंग कर दी।

सुन्दरी चित्रलेखा का दबा हुआ यौवन विकसित हो गया, विराग का तेज उल्लास की चमक से दब गया। चित्रलेखा के जीवन का स्रोत बदल गया। कृष्णादित्य ने चित्रलेखा से शपथ ली, “जब तक हम दोनों जीवित रहेंगे, हम दोनों साथ रहेंगे, कोई भी हम दोनों को अलग-

न कर सकेगा ।” चित्रलेखा ने कृष्णादित्य की शपथ पर विश्वास कर लिया था । इसके बाद जो होना चाहिए था, वही हुआ ।

चित्रलेखा गर्भवती हो गई । गुप्त प्रेम संसार पर प्रकट हो गया । कृष्णादित्य के पिता ने कृष्णादित्य को निकाल दिया और चित्रलेखा के पिता ने चित्रलेखा को । सम्पन्न पिता का पुत्र कृष्णादित्य गर्भवती सुन्दरी चित्रलेखा को लेकर भिखारी की भाँति जनरव में निकल पड़ा । त्याज्य नवयुवक को समाज की भर्त्सना और अपमान असह्य हो गये; इस अपमानजनक जीवन की अपेक्षा मृत्यु उसे अधिक प्रिय लगी । रह गई चित्रलेखा, उसे एक नर्तकी ने अपने यहाँ आश्रय दिया ।

चित्रलेखा के एक पुत्र हुआ, पर उत्पन्न होने के साथ ही वह संसार को छोड़ गया । चित्रलेखा का कण्ठ कोमल था और शरीर सुन्दर । जिस नर्तकी ने उसे आश्रय दिया था उसने उसे नृत्य तथा संगीत कला की शिक्षा दी । इसके बाद चित्रलेखा भी नर्तकी हो गयी । रहा भोग-विलास, चित्रलेखा ने एक बार फिर वैधव्य के संयम को पालने का प्रयत्न किया । कृष्णादित्य और कृष्णादित्य का पुत्र दोनों ही चित्रलेखा के जीवन में आकर निकल गए, पर दोनों ही अपनी-अपनी स्मृति उसके हृदय-पटल पर छोड़ गये ।

पाटलिपुत्र का जन-समुदाय चित्रलेखा के पैरों पर लोटा करता था पर चित्रलेखा ने संयम के तेज से जनित कान्ति को बनाये रखा । बड़े-बड़े शक्तिशाली सरदार और लक्षाधीश नवयुवक उसके प्रणय के प्यासे थे, पर उसको कोई भी न पा सका । जन-समुदाय के सामने वह असाधारण सुन्दरी आती थी और विद्युत की भाँति चमककर वह उसके सामने से लोप हो जाती थी । जिसने उसे एक बार देखा उसके हृदय में उसे एक बार फिर देखने की अमिट साध उत्पन्न हो गयी ।

एक दिन बीजगुप्त चित्रलेखा का नृत्य देखने गया । नाचते-नाचते चित्रलेखा की दृष्टि बीजगुप्त पर पड़ी—एकाएक उसका मुख श्वेत हो गया । उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो कृष्णादित्य स्वर्ग से उतर-

कर उसका नृत्य देखने आया है। वह रुक गयी और एकटक अपने को तथा अपने सामने बैठे हुए जन-समुदाय को भूलकर बीजगुप्त की ओर देखने लगी। बीजगुप्त युवा था, उसकी अवस्था प्रायः पच्चीस वर्ष की थी। चित्रलेखा के सौन्दर्य के वशीभूत होकर वह भी एकटक उसकी ओर देख रहा था। उसकी आँखें चित्रलेखा की आँखों से मिल गयीं। जन-समुदाय की आँखें उस व्यक्ति की ओर धूम गयीं जिसको चित्रलेखा देख रही थी। लोगों के मुख से निकल पड़ा, “अरे यह तो बीजगुप्त है।”

चित्रलेखा ने भी यह सुना, अपनी भूल पर उसे परिताप हुआ पर उससे अधिक क्रोध। बीजगुप्त की ओर से आँखें फेरकर वह नृत्य करने लगी। नृत्य समाप्त होने के बाद बीजगुप्त चित्रलेखा के सामने गया, उसने कहा, “क्या कभी आपके स्थान पर आपके दर्शन कर सकने का सौभाग्य प्राप्त कर सकूंगा?”

चित्रलेखा ने बीजगुप्त की ओर देखा, वह हँस पड़ी, “नहीं, मैं व्यक्ति से नहीं मिलती। मैं केवल समुदाय के सामने आती हूँ; व्यक्ति का मेरे जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं।”

बीजगुप्त की आशा पर तुषार-पात हुआ, उसका प्रफुल्ल मुख मुरझा गया। फिर भी उसने साहस किया, “व्यक्ति से ही समुदाय बनता है, समुदाय की प्यास उसके प्रत्येक व्यक्ति की प्यास है, फिर यह भेद क्यों?”

“भेद जानना चाहोगे तो सुनो। जिसे सब समुदाय का उल्लास कहते हैं, वह समुदाय के व्यक्तियों के रुदन का संप्रह है। निर्वल व्यक्तियों की आहें संगठित होकर समुदाय द्वारा जनित क्रान्ति का रूप धारण कर सकती है। और साथ ही जहाँ समुदाय से हानि की कोई सम्भावना नहीं होती वहाँ व्यक्ति का ममत्व-भाव भयोत्पादक केन्द्र बन जाता है।”

बीजगुप्त प्रेम करने गया था, दर्शन पर तर्क करने के लिए नहीं।

उसने कहा, “तो फिर यह समझ लूं कि मेरे लिए आपका द्वार बन्द है ?”

चित्रलेखा ने उसी गम्भीरता तथा शुष्क भाव से उत्तर दिया, “व्यक्ति के लिए ?—हाँ ! पर यदि व्यक्ति समुदाय का भाग है तो नहीं ।”

बीजगुप्त के मुख पर निराशा की हल्की-सी मुस्कराहट दौड़ गयी, “व्यक्तित्व जीवन में प्रधान है और व्यक्ति से ही समुदाय बनता है । जब व्यक्ति वर्जित है तो उस व्यक्ति को समुदाय का भाग बनना अपना ही अपमान करना है ।” इतना कहकर तीर की भाँति वह वहाँ से चला गया ।

बीजगुप्त चला गया, पर चित्रलेखा के हृदय में वह एक प्रकार की हलचल पैदा कर गया ।

दिन-पर-दिन बीतते गये पर चित्रलेखा ने बीजगुप्त को फिर न देखा । कृत्रिम उपेक्षा धीरे-धीरे दूर होती गयी और चित्रलेखा के हृदय में बीजगुप्त की स्मृति प्रबल हो उठी । नित्य ही नृत्य-भवन में बैठे हुए दर्शकों में उसकी आँखें बीजगुप्त को ढूँढ़ती थीं पर अन्त में उन्हें निराश होना पड़ता था ।

लाख दबाने की चेष्टा करने पर भी अभिलाषा प्रबल ही होती गयी । एक दिन चित्रलेखा ने अपनी दासी से पूछा, “इस नगर में बीजगुप्त नाम का कोई व्यक्ति रहता है ?”

दासी ने उत्तर दिया, “बीजगुप्त को कौन नहीं जानता ? वह इस नगर का सब से सुन्दर तथा प्रभावशाली युवक-सामन्त है ।”

चित्रलेखा ने दासी को एक पत्र दिया और उसे बीजगुप्त को दे देने को कहा ।

दासी ने बीजगुप्त को वह पत्र दे दिया । उसमें लिखा था, “चित्रलेखा बहुत सोच-विचार के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँची है कि केवल एक व्यक्ति उसके जीवन में आ सकता है । और वह व्यक्ति

बीजगुप्त है।” पत्र पढ़ते ही बीजगुप्त के सारे शरीर में सुख का एक हल्का-सा कम्पन दौड़ गया। उसी दिन से इन दो प्राणियों का साथ हुआ था। परं फिर भी चित्रलेखा वेश्या न थी।

बीजगुप्त ने हँसकर कहा, “मादकता और उन्माद—इन दोनों का सदा साथ रहा है और रहेगा। चित्रलेखा, हम दोनों कितने सुखी हैं।” उस समय चित्रलेखा भी हँस रही थी।

इसी समय शहनाई का बजना बन्द हो गया, प्रहरी ने उच्च स्वर में कहा, “श्रीमान् ! द्वार पर अतिथि हैं, क्या आज्ञा है ?”

बीजगुप्त ने आलिंगन-पाश ढीला कर दिया, चित्रलेखा उससे कुछ दूर हटकर बैठ गयी। बीजगुप्त ने परिचारिका से कहा, “अतिथियों को यहाँ आने दो।” इतना कहकर उसने मदिरा का पात्र खाली कर दिया।

अर्धरात्रि के समय कौन से अतिथि आ सकते हैं, बीजगुप्त इसी विषय पर सोच रहा था। उसी समय श्वेतांक के साथ रत्नाम्बर ने बीजगुप्त के केलि-गृह में प्रवेश किया। रत्नाम्बर को देखकर बीजगुप्त ने उठकर अभिवादन किया और चित्रलेखा ने अपना मस्तक तीचा कर लिया।

केलि-गृह को एक बार अच्छी तरह से देखने के बाद रत्नाम्बर की आँखें चित्रलेखा पर रुक गयीं। थोड़ी देर तक रुककर रत्नाम्बर ने कहा, “नगर की सर्वसुन्दरी तथा पवित्र नर्तकी अर्धरात्रि के समय बीजगुप्त के केलि-गृह में ! आश्चर्य होता है।” इतना कहकर रत्नाम्बर आसन पर बैठ गये। श्वेतांक खड़ा ही रहा।

बीजगुप्त ने रत्नाम्बर से पूछा, “महाप्रभु ने किस कारण दास पर कृपा करने का इस समय कष्ट उठाया ?”

रत्नाम्बर हँस पड़े, “बीजगुप्त ! तुमसे सब बातें स्पष्ट रूप से कहूँगा। आज मेरे इस शिष्य ने मुझे प्रश्न किया कि पाप क्या है। मैं इसका उत्तर देने में असमर्थ हूँ। तुम मेरी सहायता कर सकते हो। तुम मेरे शिष्य रहे हो, मैंने कभी तुमसे कोई गुरु-दक्षिणा नहीं ली। पाप का

पता लगाने के लिए ब्रह्मवारी की कुटी उपयुक्त स्थान नहीं है; संसार के भोग-विलास में ही पाप का पता लग सकेगा। तुम्हारा भवन और तुम्हारा समाज—इन चीजों से श्वेतांक को भिज्ज कराना आवश्यक है। इसीलिए मैं इसको तुम्हारे सामने सेवक-रूप में उपस्थित कर रहा हूँ। मैं चाहता हूँ कि तुम इसे सेवक-रूप में स्वीकार करो। पर एक बात और याद रखना—यह तुम्हारा गुरु-भाई भी हो सकता है।”

“महाप्रभु की आज्ञा शिरोधार्य है।” बीजगुप्त ने अपना मस्तक नमा दिया।

“अच्छा ! मैं जाता हूँ—मेरा एक काम पूरा हो गया। और श्वेतांक, यह याद रखना कि बीजगुप्त तुम्हारे प्रभु हैं और तुम् इनके सेवक। इस वैभव को भोगो और फिर पाप का पता लगाने का प्रयत्न करो। अच्छा और बुरा—यह सब तुम्हारे सामने आवेगा, पर इस कसौटी पर ध्यान रखना कि अच्छी वस्तु वही है जो तुम्हारे वास्ते अच्छी होने के साथ ही दूसरों के वास्ते भी अच्छी हो। और बीजगुप्त ! तुमसे केवल यही कहना है कि श्वेतांक के दोषों को क्षमा करना—यह अभी अदोध है, संसार में यह अभी पदार्पण ही कर रहा है।” इतना कहकर रत्नाम्बर केलि-भवन से चले गये।

रत्नाम्बर के जाने के बाद बीजगुप्त ने श्वेतांक को बड़े गौर से देखा, “तुम्हारा नाम श्वेतांक है और तुम आज से मेरे सेवक हुए।” इतना कहने के बाद बीजगुप्त के मुख पर हल्की-सी मुसकराहट दौड़ गयी। चित्रलेखा की ओर संकेत करके बीजगुप्त ने कहा, “जानते हो श्वेतांक, यह कौन हैं ?”

श्वेतांक की आँखें रात्रि के समय प्रकाश से जगमगाते हुए सुसज्जित केलि-भवन में चित्रलेखा के मादक सौन्दर्य को देखकर चकाचौंध हो गयीं। उसने कहा, “नहीं।”

“अच्छा तो सुनो ! इनका नाम चित्रलेखा है, और यह पाटलिपुत्र की सर्वसुन्दरी नर्तकी होते हुए भी मेरी पत्नी के बराबर हैं। इसीलिए

यह तुम्हारी स्वामिनी भी हुई ।” इतना कहकर बीजगुप्त हँस पड़ा । “तुम आश्चर्य में आ गे होगे ? पर आश्चर्य करने की कोई वात नहीं । यहाँ रहकर तुम परिस्थितियों को अपना सकोगे । अच्छा, यह मदिरा का पात्र अपनी स्वामिनी को दो ।” इतना कहकर बीजगुप्त ने सुगंधित मदिरा से भरा हुआ स्वर्ण-पात्र श्वेतांक के हाथ में दे दिया ।

श्वेतांक ने मदिरा का पात्र चित्रलेखा की ओर बढ़ा दिया । मदिरा का पात्र लेते हुए श्वेतांक का हाथ चित्रलेखा के हाथ से स्पर्श कर गया । इस स्पर्श से श्वेतांक का सारा गात कंप-सा उठा । चित्रलेखा ने श्वेतांक की ओर देखा । “नवयुवक, तुम्हें इस अनोखे संसार में प्रयम् बार आने के उपलक्ष्य में बधाई है ।” इतना कहकर उसने मदिरा का पात्र खाली कर दिया ।

उसी समय प्रहरी ने उच्चस्वर में कहा, “शयन का समय हो गया ।”

बीजगुप्त ने चित्रलेखा से पूछा, “यहाँ रहोगी, या अपने भवन को जाओगी ।”

चित्रलेखा उठ खड़ी हुई । द्वार की ओर बढ़ते हुए उसने कहा, “अपने भवन को ही इस समय जाना उचित होगा । पर शायद अकेली न जा सकूँगी—” उस समय उसके पैर लड़खड़ा रहे थे ।

परिचारिका ने केलि-गृह में प्रवेश किया । बीजगुप्त भी उठ खड़ा हुआ, हाँ, इस समय अकेले जाना बास्तव में असम्भव होगा ।”

कुछ देर तक सोचकर बीजगुप्त ने श्वेतांक से कहा, “द्वार पर रथ खड़ा है । उसमें बिठाकर तुम अपनी स्वामिनी को उसके भवन तक पहुँचा दो । उस समय तक तुम्हारे शयन-गृह का प्रबन्ध हो जायगा ।”

श्वेतांक चित्रलेखा के साथ चला गया । बीजगुप्त ने परिचारिका को श्वेतांक के शयन-गृह का प्रबन्ध कर देने की आज्ञा देकर निद्रादेवी की शरण ली ।

द्वितीय परिच्छेद

कुमारगिरि योगी था !

योगी ? हाँ, क्योंकि उसने संसार छोड़ दिया था । क्यों ? एक दूसरा कल्पना का संसार प्राप्त करने के लिए, इस आशा पर कि वह संसार सुख से पूर्ण होगा । जनरव से उसे अरुचि थी—कल्पना का मण्डल उसके विचरने का क्षेत्र था । संसार में उसे शान्ति न थी, इसीलिए शान्ति को पाने के लिए उसे निर्जन की शरण लेनी पड़ी थी । संयम और नियम—इनपर उसे विश्वास था, इच्छाएँ उसके वशीभूत थीं ।

योगी कुमारगिरि में शक्तियाँ भी थीं । पर वह उन शक्तियों को संचय करने में ही विश्वास करता था, प्रयोग करने में नहीं । एकान्त में उसका मन स्थिर रहता था, और एकाग्रचित्त होकर वह अभ्यास भी कर सकता था । उसने अपना शरीर तपा दिया था, पर उसको कष्ट नहुआ था । शरीर तपता था, पर उसकी जलन को एक अलौकिक सुख की कल्पना शीतल कर देती थी । उसने वासनाओं को दबा दिया था, क्योंकि वासनाओं के कारण ही मनुष्य पाप करता है ।

योगी कुमारगिरि सुखी था । विचार-सागर में वह डूबा रहता था; उसके सामने इच्छाओं का संसार न था और इच्छाओं के न पूर्ण होने से जनित परिताप न था । उसके जीवन की अकर्मण्यता पर ज्ञान और विचार का आवरण था । सुख कल्पना है—तृप्ति है । प्यास न होने के कारण तृप्ति का कोई वास्तविक महरव न भी हो, पर ऐसी स्थिति में हृदय पर कोई भार नहीं रहता, कसक की टीस की अनभिज्ञता प्रधान होती है । दुःख से शून्य तथा हल्के-से हृदय को कल्पना के संसार में ले जाना सरल होता है । योगी कुमारगिरि विस्मृति के अंक में निवास

करता था । आत्म-विस्मृति और कल्पना की सजीवता का भ्रम—इन दोनों में अजब मस्ती है । एक काल्पनिक चाह थी, एक काल्पनिक तृप्ति भी वहाँ पर थी, दो कल्पनाओं से उत्पन्न सुख में वह मग्न रहता था ।

और इसीलिए कुमारगिरि योगी था ।

मधुपाल योगी कुमारगिरि का शिष्य था । मधुपाल कुमारगिरि की शक्तियों से परिचित था, और साथ-साथ चकित भी ।

मधुपाल ने पूछा, “देव, संयम का लक्ष्य क्या है ?”

कुमारगिरि सम्हलकर बैठ गये, “शान्ति ! और शान्ति-जनित आनन्द !”

मधुपाल ने फिर पूछा, “देव ! संसार की वास्तविक गति क्या है ?”

“बाह्य दृष्टि से परिवर्तन, और आन्तरिक दृष्टि से शून्य । शून्य और परिवर्तन—इनके विचित्र संयोग पर तुम्हें शायद आश्चर्य होगा—ये दोनों एक किस प्रकार से हो सकते हैं, यह प्रश्न स्वाभाविक होगा । पर वही स्थिति, जहाँ मनुष्य परिवर्तन और शून्य के भेद-भाव से ऊपर उठ जाता है, ज्ञान की अन्तिम सीढ़ी है । संसार क्या है ? शून्य है । और परिवर्तन उस शून्य की चाल है । परिवर्तन कल्पना है, और कल्पना स्वयम् ही शून्य है । समझे ?”

मधुपाल इस उत्तर से सन्तुष्ट न हो सका । “देव, आपने कहा कि संसार शून्य है । यह मेरी समझ में नहीं आया । जो वस्तु दृष्टि के सामने है वह शून्य किस प्रकार हो सकती है ?”

कुमारगिरि हँस पड़े, “यहाँ तो योग की आवश्यकता होती है । योगी जिस समय अँखें बन्द करता है, उस समय एक अखण्ड शून्य रहता है, और कुछ नहीं । उसी शून्य में सुख-दुख, अनुराग-विराग, दिन-रात, ब्रह्म और माया से सब-के-सब लोप हो जाते हैं । उसी प्रकाशवान शून्य में वह विचरता है और वहाँ वह निमग्न हो जाता है । जहाँ से उसकी उत्पत्ति हुई है वहाँ वह इस काल्पनिक जीवन के कुछ क्षणों के लिए मिल जाता है । और उसी ब्रह्म से युक्त शून्य में सदा के लिए मिल

जाने को मुक्ति कहते हैं। इस तरह योगी इसी शरीर के साथ मुक्ति का अनुभव करता है।”

अपने गुरु के प्रति मधुपाल की श्रद्धा उमड़ पड़ी। गद्गद होकर उसने गुरु के चरणों में अपना मस्तक नमा दिया। उसे अपने गुरु के अखण्ड ज्ञान पर गवं था, और गुरु के अच्युत होने पर विश्वास। इसी समय रत्नाम्बर ने विशालदेव के साथ कुमारगिरि की कुटी में प्रवेश किया।

रत्नाम्बर को सन्मुख देखकर कुमारगिरि आसन से उठ खड़े हुए। दोनों एक दूसरे से गले मिले। इसके बाद रत्नाम्बर को आसन देकर कुमारगिरि ने पूछा, “आचार्य ने किसलिए यह कष्ट उठाया?”

निश्चल भाव से रत्नाम्बर ने उत्तर दिया, “अखण्ड तेज से विभू-वित योगी कुमारगिरि से अपने शिष्य को दीक्षित करने के लिए ही मैं उपस्थित हुआ हूँ।”

कुमारगिरि ने कहा, “आचार्य, इस तुच्छ सेवक को एक बहुत बड़ा स्थान दे रहे हैं और मैं उसके लिए सर्वथा अयोग्य हूँ।”

“नहीं, योगी कुमारगिरि, यह तुम्हारी उदारता है। तुम वास्तव में श्रेष्ठ हो। तुम संसार से बहुत ऊँचे उठ चुके हो और मैं अभी तक संसार में ही हूँ। जहाँ केवल तर्क किसी समस्या को सुलझाने में पर्याप्त नहीं होता वहाँ अनुभव की तथा कल्पना की आवश्यकता होती है। तुममें ज्ञान है और कल्पना है, मुझमें केवल अनुभव है। इसीलिए तुम्हारे पास आया हूँ। तुम्हारे साथ रहकर मनुष्य जीवन की जटिल-से-जटिल समस्याओं को सफलतापूर्वक हल करने में समर्थ हो सकेगा। इसीलिए मैं विशालदेव को तुम्हारा शिष्य बनाना चाहता हूँ। योगी कुमारगिरि, तुम मेरा अनुरोध न टालोगे और मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करोगे।”

कुमारगिरि ने विशालदेव की ओर देखा, “वत्स ! जीवन की किस समस्या को सुलझाने के लिए तुम्हें मेरे पास आना पड़ रहा है ?”

विशालदेव ने कुमारगिरि को अभिवादन करके शान्त-भाव से उत्तर दिया, “देव ! मैं जानना चाहता हूँ कि पाप क्या है ?”

कुमारगिरि हँस पडे । उनकी हँसी में माधुर्य था । उन्होंने कहा, “तुम जानना चाहते हो कि पाप क्या है ! पर पाप क्या है, यह अधिक-तर अनुभव से ही जाना जा सकता है, और मेरे साथ रहकर तुम्हें पाप का अनुभव न हो सकेगा । मेरा क्षेत्र है संयम और नियम—और संयम और नियम से पाप दूर रहता है । फिर भी आचार्य का अनुरोध है कि मैं तुम्हें अपना शिष्य बनाऊँ । शिष्य बनाने के पहिले तुम पर और आचार्य पर यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि मैं तुम्हें पुण्य का रूप दिखला दूँगा, और पुण्य को जानकर तुम पाप का पता लगा सकोगे ।”

कुमारगिरि की बातें सुनकर रत्नाम्बर मन-ही-मन मुस्कराये । उन्होंने कहा, “योगी कुमारगिरि ! जो कुछ तुमने कहा वह उचित कहा । किसी भी समझदार व्यक्ति को इसमें आपत्ति न होगी ।”

“तो फिर आचार्य का अनुरोध स्वीकार है ।”

रत्नाम्बर उठ खड़े हुए । “अच्छा योगी कुमारगिरि, तो अब मैं तुम्हारी आज्ञा चाहता हूँ । तुम्हें शायद आश्चर्य होगा, पर मैं स्वयम् ही [नहीं जानता हूँ कि पाप क्या है । वर्षों के अध्ययन और अनुभव के बाद भी पूर्ण-ज्ञान की थाह नहीं ले सका हूँ । अपने शिष्यों को मैंने योग्य व्यक्तियों के हाथ में सौंप दिया है, अब मैं कुछ थोड़ी-सी तपस्या भी करूँगा । देखूँगा कि जिस बात को मैं अध्ययन तथा अनुभव से नहीं जान सका, क्या मैं उसे अराधना और साधना से जान सकता हूँ ।”

इतना कहकर रत्नाम्बर वहाँ से चले गये ।

रत्नाम्बर के चले जाने के बाद कुमारगिरि ने संकेत से विशालदेव को बिठलाया ।

“वत्स, तुम मेरे शिष्य हुए । इस समय मैं तुमसे कुछ प्रश्नों का उत्तर चाहूँगा । जानते हो वासना क्या है ?”

विशालदेव ने उत्तर दिया, “देव ! वासना इच्छाओं का दूसरा नाम है ।”

“ठीक ! पर यह भी जानते हो कि मनुष्य के जीवन में वासना का क्या स्थान है ?” कुमारगिरि ने पूछा, “शायद नहीं ! और वह तुम्हें मैं आज बतलाऊँगा । वासना पाप है, जीवन को कलुषित बनाने का एक मात्र साधन है । वासनाओं से प्रेरित होकर मनुष्य ईश्वरीय नियमों का उल्लंघन करता है, और उनमें डूबकर मनुष्य अपने को और अपने रचयिता ब्रह्म को भूल जाता है । इसीलिए वासना त्याज्य है । यदि मनुष्य अपनी इच्छाओं को छोड़ सके तो वह बहुत ऊपर उठ सकता है । ईश्वर के तीन गुण तं—सत्, चित् और आनन्द ! तीनों ही गुण वासना से रहित विशुद्ध मन को मिल सकते हैं । पर वासना के होते हुए ममत्व प्रधान रहता है, और ममत्व के भ्रांतिकारक आवरण के रहते हुए इनमें से किसी एक का पाना असम्भव है । विशालदेव ! मेरा शिष्य होकर तुम्हें जो पहिला काम करना पड़ेगा वह यह होगा कि तुम वासना को त्यागकर अपने मन को शुद्ध करो । यह एक तपस्या है, पर इस तपस्या में दुःख नहीं है । इच्छाओं का दबाना उचित नहीं, इच्छाओं को तुम उत्पन्न ही न होने दो । यदि एक बार इच्छा उत्पन्न हो गयी तो फिर वह प्रवल रूप धारण कर लेगी । इसीलिए तुम्हारा कर्तव्य होगा इच्छाओं को सदा के लिए मार डालना । बोलो, इतना कर सकोगे ?”

विशालदेव ने उत्तर दिया, “देव ! इतना करने का प्रयत्न करूँगा । कर सकूँगा या नहीं, यह मैं नहीं कह सकता । आपका बतलाया हुआ मार्ग सरल है, पर उसमें कुछ आपत्ति अवश्य है । वासनाओं का हनन क्या जीवन के सिद्धान्तों के प्रतिकूल नहीं है ? मनुष्य उत्पन्न होता है, क्यों ? कर्म करने के लिए । उस समय कर्म करने के साधनों को नष्ट कर देना क्या विधि के विधान के प्रतिकूल नहीं है ? देव, जिस समय आप इस सम्बन्ध में मेरा भ्रम निवारण कर देंगे उस समय मैं आपके निर्धारित मार्ग पर चलूँगा ।”

कुमारगिरि सम्भवतः विशालदेव से इस उत्तर को पाने के लिए

तैयार बैठे थे । उन्होंने कहा, “तुमने उचित ही कहा है विशालदेव, क्योंकि तुमपर एक गुरु का प्रभाव है । उस प्रभाव को दूर करके मुझे तुमपर अपना प्रभाव जमाना पड़ेगा । मैं तुम्हारा भ्रम निवारण कर दूंगा, पर आज नहीं । भ्रम मैं पड़े हुए गुरु के शिष्य में भ्रमों का होना स्वाभाविक ही है । पर देखता हूँ विशालदेव ! आचार्य रत्नाम्बर के विचार किसी अंश तक जास्तिकता की ओर भुके हुए हैं । मैं आस्तिक हूँ । इसके पहिले कि तुम मुझसे कुछ सीख सको, तुम्हें दो बातों को मानना पड़ेगा । प्रथम यह कि ब्रह्म है और दूसरा यह कि कर्तव्य जीवन का प्रधान अंग है ।”

विशालदेव ने उत्तर दिया, “देव ! मैं इन दो बातों को मानता हूँ !”

कुमारगिरि उठ खड़े हुए, “तो फिर निश्चिन्त हो गया । मैं तुम्हें दीक्षा दूंगा और तुम्हें मुक्ति का मार्ग दिखलाकर पाप से परिचित करा दूंगा ।”

तृतीय परिच्छेद

श्वेतांक ब्रह्मचारी था । उसका क्षेत्र था अनुभव-रहित अध्ययन और उसका ध्येय था ज्ञान । उसकी अवस्था उस समय प्रायः पञ्चीस वर्ष की थी, और उतने ही काल में उसने दर्शनों तथा स्मृतियों का अध्ययन कर लिया था । उसने व्याकरण पढ़ा था और साहित्य पढ़ा था । काव्य में प्रेम के सजीव वर्णनों को उसने ध्यान से पढ़ा था, उनको समझने की चेष्टा भी की थी, पर समझन सका था । स्त्री को वह न जानता था, यौवन की मादकता का उसे परिचय न था ।

बीजगुप्त के भवन में ब्रह्मचारी श्वेतांक और नर्तकी चित्रलेखा का साथ हुआ । बीजगुप्त ने जिस समय श्वेतांक से चित्रलेखा का परिचय कराया था, उसने केवल हँसी की थी । पर जब उसने परिस्थितियों पर विचार किया, उसे कौतूहल हुआ । ब्रह्मचारी और नर्तकी ! — बीजगुप्त इस संयोग पर हँस पड़ा ।

पर बीजगुप्त की हँसी श्वेतांक के जीवन में एक हलचल थी । प्रायः नित्य ही रात के समय श्वेतांक को चित्रलेखा के साथ, उसके भवन तक पहुँचाने जाना पड़ता था । उस समय चित्रलेखा मद से उतावली रहती थी । चित्रलेखा की आँखों की मस्ती श्वेतांक के हृदय में एक प्रकार का कम्पन उत्पन्न कर देती थी । स्त्री और मंदिरा—तेल से भरे दीपक की प्रज्वलित ज्योति थी जिसके चारों ओर श्वेतांक एक पर्तिगे की भाँति चक्कर काट रहा था । श्वेतांक जिस समय चित्रलेखा की ओर देखता था, एक विचित्र प्रकार के सुख का अनुभव करता था और वह सुख क्या था ? अज्ञात चाह का कम्पन । जिस समय चित्रलेखा की अधखुली मस्त आँखें श्वेतांक की आँखों से मिल जाती थीं—उस समय श्वेतांक पागल की भाँति झूमने लगता था ।

बीजगुप्त के भवन में श्वेतांक की गणना बीजगुप्त के छोटे भाई की तरह होती थी। बीजगुप्त के सेवक श्वेतांक को अपनी ही कोटि का न मानते थे, वे बीजगुप्त की भाँति श्वेतांक को अपना स्वामी समझते थे। भोग-विलास के समस्त साधन श्वेतांक के सामने उपस्थित थे। नगर के प्रभावशाली व्यक्तियों से उसका परिष्ठय हो गया था। एक गहरे अंधकार से निकलकर श्वेतांक एक आलोकमय संसार में आ पड़ा था, इसलिए अपनी स्थिति पर वह स्वयम् ही विश्वास न कर सका। पर श्रीरे-धीरे वह परिस्थितियों के अनुकूल होने लगा। उसे अनुभव हुआ कि वह संसार में ही है, पाप और पुण्य के बीच में है, वासनाओं का उसके चारों ओर जमघट है। उसको यह विदित हो गया कि वह संसार की लहरों में वह रहा है।

उस दिन बीजगुप्त कारण-वश बाहर चला गया था। काम इतना आवश्यक और अचानक आ पड़ा था कि बीजगुप्त संध्या के समय न लौट सका। निर्धारित समय पर चित्रलेखा का रथ बीजगुप्त के द्वार पर रुका। श्वेतांक ने चित्रलेखा का स्वामी से रिक्त गृह में स्वागत किया। दोनों बीजगुप्त की बैठक में गये। बीजगुप्त को न देखकर चित्रलेखा ने पूछा, “तुम्हारे स्वामी कहाँ हैं?”

“तुम्हारे स्वामी कहाँ हैं”, ब्रह्मचारी ने नर्तकी के मुख से यह प्रश्न सुना और उसे बुरा भी लगा। यह वाक्य तीर की भाँति पैना था, और यदि यही वाक्य किसी दूसरी साधारण स्त्री के मुख से निकला होता तो श्वेतांक शायद उसका कटु उत्तर देता, या इसपर बुरा तक न मानता। श्वेतांक को प्रथम बार अपनी स्थिति तथा अपनी लघुता का आभास हुआ, और साथ ही उसे परिताप भी हुआ। पर अपने मनोभावों को दबाकर उसने उत्तर दिया, “देवि, कार्यवश वे कहों बाहर गये हैं।”

चित्रलेखा ने पूछा, “कब तक उनके आने की सम्भावना है?”
“आते ही होंगे !”

“श्वेतांक ! मुझे प्यास लगी है ।”

श्वेतांक उठ खड़ा हुआ । उसे अपनी स्थिति का ज्ञान हो चुका था, और उसी के साथ उसको वीजगुप्त के वे शब्द भी याद हो आये थे, “चित्रलेखा तुम्हारी स्वामिनी है ।” अपने हाथ से वह स्यवम् ही स्वर्ण-पात्र में शीतल जल ले आया ।

चित्रलेखा ने पानी देखा और मुसकराई । “श्वेतांक ! तुम निरे बालक हो ।”

श्वेतांक चित्रलेखा के इस व्यंग को न समझ सका—“देवि, कौन सी भूल हुई है ?”

इस बार चित्रलेखा जोर से हँस पड़ी । श्वेतांक ! तुम अब भी नहीं समझ सके । पिपासा तृप्त होने की चीज़ नहीं । आग को पानी की आवश्यकता नहीं होती, उसे धृत की आवश्यकता होती है जिससे वह और भड़के । जीवन एक अविकल पिपासा है । उसे तृप्त करना जीवन का अन्त कर देना है । मुझे जल की आवश्यकता नहीं, मुझे मदिरा चाहिए ।”

श्वेतांक इस उत्तर से चकित हो गया । बात कितनी भयानक थी, पर कितनी तर्कपूर्ण थी । श्वेतांक भी हँस पड़ा, “शायद मुझे पाटलि-पुत्र की सर्व-सुन्दरी स्त्री का शिष्य होना पड़ेगा देवि !” इतना कहकर उसने चित्रलेखा के सामने मदिरा का प्याला बढ़ाया ।

एक धूंट पीकर चित्रलेखा ने मदिरा का प्याला श्वेतांक के सामने रख दिया । उस समय वह तकिया के सहारे बैठी हुई थी । उसके सिर का बस्त्र खिसक गया था और उसके सिर के बाल अंधकार की भाँति काले थे । उन बालों में गुंथी हुई मोतियों की माला प्रकाश की भाँति चमक रही थी । कितना सुन्दर था उसका वेश—श्वेतांक ने कभी ऐसी अनुपम सुन्दरी की कल्पना तक न की थी । चित्रलेखा का यौवन उन्माद का प्रतिबिम्ब था; उसके अरुण कपोलों पर लाली थी; उसके अधर मन्द मुसकान के पराग से भीगे हुए थे । उसकी आँखें हँस रही थीं ।

श्वेतांक मौन-भाव से चित्रलेखा के सौंदर्य को निरख रहा था। चित्रलेखा ने पूछा, “देखती हूँ श्वेतांक, तुम मदिरा नहीं पीते। मैंने तुम्हारे सामने मदिरा का पात्र बढ़ा दिया है, पर तुम्हारे हाथ इसे मुंह तक ले जाने का साहस नहीं कर सकते। मैं तुमसे एक प्रश्न पूछूँगी, उसका ठीक-ठीक उत्तर देना होगा।”

श्वेतांक ने अपना सिर झुका दिया।

“तुम ब्रह्मचारी रहे हो, और तुम्हारे गुरु ने तुमसे मदिरा पीने का निषेध किया होगा। इसका कारण मैं जानना चाहती हूँ।”

श्वेतांक ने धीरे से उत्तर दिया, “देवि! संयम जीवन का एक आवश्यक अंग है, और मदिरा और संयम में विरोध है।”

“और संयम का लक्ष्य क्या है?”

“सुख और शान्ति।”

चित्रलेखा ने मदिरा के पात्र को अपने अधरों से लगाते हुए पूछा “और जीवन का लक्ष्य?”

चित्रलेखा की आँखें मादकता से कुछ-कुछ लाल होने लगी थीं, श्वेतांक ने चित्रलेखा के स्वर में एक प्रकार के संगीत का अनुभव किया, उसके वार्तालाप में कविता का। उसने उत्तर दिया, “जीवन का लक्ष्य? सुख और शान्ति!”

“यहीं पर तुम भूलते हो नवयुवक!” चित्रलेखा सम्हलकर बैठ गयी। “सुख तृप्ति है और शान्ति अकर्मण्यता। पर जीवन अविकल कर्म है, न बुझनेवाली पिपासा है। जीवन हलचल है, परिवर्तन है; और हलचल तथा परिवर्तन में सुख और शान्ति का कोई स्थान नहीं।” इतना कहकर उसने मदिरा का पात्र श्वेतांक के होठों से लगा दिया।

श्वेतांक ने एक बार मदिरा के पात्र को हटा देने को सोचा, पर चित्रलेखा की हँसती हुई आँखों में विचित्र जादू था। वह न तो चित्रलेखा को रोक सका और न अपने ही को। मदिरा उसके गले के नीचे उत्तर गयी।

इसी समय बीजगुप्त ने पीछे से हँसते हुए कहा, “ब्रह्मचारी ! आज तुम्हें नर्तकी ने दीक्षा दी है, इसके उपलक्ष्य में मैं चित्रलेखा को वधाई देता हूँ ।”

श्वेतांक मोहनिद्रा से एकाएक चौंक उठा । बीजगुप्त की हँसी ने उसकी भूल का आभास कर दिया । उसने चित्रलेखा की ओर देखा और फिर बीजगुप्त की ओर । इसके बाद उसने मस्तक नीचा कर लिया । बीजगुप्त हँसता हुआ वस्त्र बदलने चला गया । बीजगुप्त के जाने के बाद श्वेतांक ने चित्रलेखा से कहा, “देवि ! आज तुमने मेरी साधना चूर-चूर कर दी । तुमने यह क्यों किया ? तुमने मेरे हृदय में एक ज्वाला प्रज्वलित करदी है । किसलिए ? देवि, मेरे जीवन में तुम ब्रवण्डर बनकर एकाएक क्यों आ पड़ों ?” इतना कहते-कहते श्वेतांक ने चित्रलेखा का हाथ जोर से पकड़ लिया ।

चित्रलेखा ने हँसते हुए उत्तर दिया, “श्वेतांक, तुम भूल करते हो । जिसे तुम साधना कहते हो, वह आत्मा का हनन है । मैंने तुम्हें केवल इतना दिखलाया है कि मादकता जीवन का प्रधान अंग है । रही तुम्हारे हृदय में ज्वाला उत्पन्न करने की बात, मैंने तो तुम्हें केवल जीवन का वास्तविक महत्व दिखलाया है ।” चित्रलेखा एकाएक गम्भीर हो गयी । उसने श्वेतांक का हाथ झटक दिया “श्वेतांक, यह याद रखना कि तुम्हारे जीवन में मेरा आना असम्भव है । सब कुछ होते हुए भी मैं अपनी मनोवृत्ति जानती हूँ । मैं संसार में केवल एक मनुष्य से प्रेम करती हूँ और वह बीजगुप्त है । कभी इस बात की कल्पना तक न करना कि मैं तुम्हारे जीवन में आ सकती हूँ । अब तुम जा सकते हो ।”

श्वेतांक का मुख पीला पड़ गया । वह एक नर्तकी से हारा—ज्ञान में, कर्तव्य में और व्यक्तित्व में । उसने कहा, “जो आज्ञा देवि !” और इतना कहकर अपमानित तथा विजित ब्रह्मचारी द्वार की ओर बढ़ा । चित्रलेखा ने कुछ सोचा और कुछ समझा । द्वार के बाहर गये

श्वेतांक को उसने पुकारा “श्वेतांक ! ठहरो, तुमसे कुछ और कहना है, यहाँ लौट आओ ।”

श्वेतांक रुक गया । वह लौटा नहीं, घूमकर उसने उत्तर दिया, “देवि ! क्या अभी और भर्त्सना करना शेष है ? क्या अपनी आत्मा की निर्वलता का इतना पुरस्कार यथेष्ट नहीं है ? देवि, तुम मेरी स्वामिनी हो और साथ-साथ मेरे जीघन की...! नहीं, क्षमा करना ! तुम केवल मेरी स्वामिनी हो, इसलिए तुम्हारी आज्ञा मुझको शिरोधार्य है । क्या कहना है देवि ?” उस समय श्वेतांक की आँखों में जल भर आया था ।

चित्रलेखा के हृदय में श्वेतांक—बालक श्वेतांक की इन बातों से आघात पहुँचा । उसने कहा, “श्वेतांक ! मैंने भूल की थी । मैंने तुमसे कटु बर्ताव किया, इसके लिए मैं तुमसे क्षमा चाहती हूँ । श्वेतांक ! मेरा तुम पर अनुराग है, तुम मेरे भाई के समान हो, और तुम्हारे दुःख से मुझे दुःख होता है । मैंने अनजाने में शायद तुम्हारा अपमान भी किया है, इसके लिए मैं तुमसे क्षमा माँगती हूँ ।”

चित्रलेखा की क्षमा-प्रार्थना से श्वेतांक का दुःख और क्षोभ दूर हो गया । उसके हृदय की यंत्रणा हिम की भाँति पिघल गयी । उसने चित्रलेखा में एक देवी की मूर्ति देखी—एक प्रकार का आलोक देखा । उसकी दृष्टि में अब चित्रलेखा नर्तकी न रह गयी, उसे ऐसा अनुभव हुआ कि मानो उसका चित्रलेखा से पारलैकिक सम्बन्ध है । उसने कहा, “देवि ! क्षमा-याचना की कोई आवश्यकता नहीं । भूल मेरी थी, और इस भूल का मुझे दण्ड भी मिलना चाहिये था । पर देवि ! तुमने मुझे दण्ड देने की जगह मुझपर कृपा की है । तुमने मुझे ढूबने से बचाकर मुझपर कितना अनुग्रह किया है, यह मैं नहीं कह सकता । तुम मुझे क्षमा करना देवि !” इतना कहकर श्वेतांक भवन के बाहर चला गया, और चित्रलेखा मूर्ति की भाँति निश्चल खड़ी रह गयी । अनजाने में एक अवोध बालक को उसने अपने यौवन की मादकता का शिकार बनाया था, इसपर उसे दुःख था ।

श्वेतांक सीधे बीजगुप्त के पास पहुँचा। पहुँचते ही वह बीजगुप्त के चरणों पर गिर पड़ा। उसने केवल इतना ही कहा, “स्वामी, मुझे दण्ड दें।”

बीजगुप्त श्वेतांक के व्यवहार से चौंक उठा। उसने श्वेतांक को उठाकर पूछा, “श्वेतांक, क्यों? क्या बात है?”

श्वेतांक ने भराए हुए स्वर में उत्तर दिया, “स्वामी, मैंने आपके साथ विश्वासघात करने का अपराध किया है। मैंने उस स्त्री से प्रेम करने का अपराध किया है जो आपसे प्रेम करती है और जिससे आप प्रेम करते हैं, और साथ ही जो मेरी स्वामिनी है।”

बीजगुप्त सब कुछ समझ गया। वह मन-ही-मन मुसकराया, “श्वेतांक तुमने यह कैसे जाना कि वह स्त्री भी मुझसे प्रेम करती है?”

“उसने मुझसे स्वयम् ही यह कहा है।” श्वेतांक के ऊपर मदिरा का प्रभाव आ गया था। उसने अपने शरीर में एक प्रकार की स्फूर्ति का अनुभव किया। “आज मैंने उसके हाथ से मदिरा पीकर अपने संयम को तोड़ दिया; और यह इसलिए कि जिस स्त्री से मैं प्रेम करता हूँ उसके हाथ की मदिरा को मैं अस्वीकार न कर सका।”

कृत्रिम गम्भीरता धारण करते हुए बीजगुप्त ने कहा, श्वेतांक! यदि वह स्त्री तुमसे यह न कहती कि वह मुझसे प्रेम करती है, और यदि वह तुम्हें आत्म-समर्पण करने पर प्रस्तुत हो जाती, तो तुम क्या करते?”

कुछ देर तक सोचकर श्वेतांक ने कहा, “तो शायद मैं स्वामी से क्षमा-प्रार्थना भी न करता और स्वामी के साथ विश्वासघात करके एक गुह अपराध कर देता।”

बीजगुप्त ने श्वेतांक की पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा, “श्वेतांक, मुझसे क्षमा-प्रार्थना करने की कोई आवश्यकता नहीं है। तुमने जो कुछ किया, उसके विपरीत तुम्हारी परिस्थिति में दूसरा मनुष्य नहीं कर सकता। तुमने जो कुछ किया वह उचित किया और जो कुछ करते

वह भी उचित ही करते । उसमें तुम्हारा बिल्कुल दोष न होता, दोष होता केवल परिस्थितियों का । पर मैं तुमसे प्रसन्न हूँ । तुमने अपराध किया, पर तुमने जिसके प्रति अपराध किया था उससे अपना अपराध कहकर अपने अपराध को धो दिया । तुम मुझसे सत्य बोले, और यही तुम्हारे लिए उचित भी था । रही मेरे साथ विश्वासवात करने की बात, वहाँ श्वेतांक तुम भूलते हो । तुमने अभी संसार में प्रवेश किया है, तुम संसार के अनुभवों से रहित हो । न जाने कितनी बार तुम्हें अनुभव की परीक्षा की कसौटी पर चढ़ना पड़ेगा, उस समय तुम्हें कर्तव्याकर्तव्य का विचार रखना पड़ेगा । इच्छाएँ प्रब्रल रूप धारण करके तुम्हें सतावेंगी और तुम्हें उनका दमन करना पड़ेगा । यहीं पर तुम्हारी आत्म-शक्ति की परीक्षा होगी । विजय और पराजय का क्षेत्र संसार है, निर्जन नहीं है ।”

श्वेतांक रो रहा था, उसने उत्तर दिया, “स्वामी, यह सब कहुँगा, पर इस अपराध का दण्ड मिलना ही चाहिए ।”

बीजगुप्त ने श्वेतांक के सिर पर हाथ रखकर कहा, “रोते क्यों हो ? इस अपराध का दण्ड चाहते हो ? पर अपराध तुमने किया ही नहीं, फिर दण्ड कैसा ? अपराध कर्म में होता है, विचार में नहीं । विचार कर्म का साधन-मात्र है । फिर भी यदि तुम दण्ड चाहते हो, तो मैं तुम्हें सब से कठिन दण्ड दूँगा । वह दण्ड यह होगा कि तुम्हें नित्य की भाँति भविष्य में चित्रलेखा को उसके भवन तक पहुँचाना पड़ेगा ।”

चतुर्थ परिच्छेद

विशालदेव ने कुमारगिरि में एक महान् आत्मा देखी। कुमारगिरि के ज्ञान और तेज़ के सामने वह भुक गया। कुमारगिरि के तर्क अकाट्य थे, विशालदेव के सब भ्रातों को वह ध्यान में निवारण कर देता था। कुमारगिरि ने विशालदेव को योग का अभ्यास कराना आरम्भ कर दिया। कुमारगिरि को योग्य शिष्य मिला और विशालदेव को योग्य गुरु।

उस दिन कुमारगिरि विशालदेव को उपासना का महत्व बतला रहे थे। उस समय सूर्यास्त हो चुका था, निर्जन में कुमारगिरि की कुटी का दीपक टिमटिमा रहा था। अचानक द्वार पर पद-ध्वनि सुनाई दी और साथ ही किसी ने कहा, “भूले हुए पथिक रात्रिभर के लिए आश्रय चाहते हैं।”

कुमारगिरि ने उत्तर दिया, “उनका स्वागत है। मेरी कुटी प्रत्येक भूले हुए प्राणी के लिए खुली है।” अपने उत्तर पर कुमारगिरि स्वयम् हँस पड़े।

उसी समय एक स्त्री के साथ एक पुरुष ने कुटी में प्रवेश किया।

स्त्री को देखकर योगी कुमारगिरि चौंक उठे। उन्होंने पुरुष से कहा, “अतिथि! तुमने मुझसे पहिले ही क्यों नहीं बताया कि तुम्हारे साथ एक स्त्री भी है। तुम्हें यह ज्ञात होना चाहिए कि यह उस योगी की कुटी है जो संसार छोड़ चुका है।

पुरुष ने उत्तर दिया, “भगवन्, मुझे यह तो ज्ञात है कि यह एक योगी की कुटी है, पर यह नहीं सोचा था कि एक इंद्रियजित योगी को केवल रात्रिभर के लिए एक स्त्री को, और उस स्त्री को जो एक पुरुष के साथ है आश्रय देने में संकोच होगा।”

इस उत्तर से कुमारगिरि निस्तेज हो गये। उस समय तक स्त्री आसन पर बैठ गयी थी और दीपक के मन्द प्रकाश के सामने उसका मुख हो गया था। कुमारगिरि ने कहा, “अतिथि ! मैंने इस कुटी में स्त्री को अश्रय देने में जो संकोच किया था वह केवल इसलिए कि स्त्री अंधकार है, मोह है, माया है और वासना है। ज्ञान के आलोकमय संसार में स्त्री का कोई स्थान नहीं। पर किर भी तुम दोनों मेरे अतिथि हो, इसलिए तुम दोनों का अतिथि-सत्कार करना मेरा कर्तव्य है।”

स्त्री अभी तक इस वातलिप को आश्चर्य तथा कौतूहल के साथ सुन रही थी। उसने कुमारगिरि के वाक्य समाप्त होने पर उनके सामने अपना मस्तक नमाकर कहा, “प्रकाश पर लुब्ध पतंग को अन्धकार का प्रणाम है !”

वाक्य तीर की भाँति पैने तथा घातक थे, स्वर संगीत की भाँति कोमल। सौंदर्य में कवित्व था, वासना की मस्ती में अहंकार। कुमारगिरि इस असाधारण स्त्री का असाधारण अभिवादन सुनकर चौंक-से उठे, उन्होंने उस स्त्री की ओर ध्यान से देखा। स्त्री को देखकर वह चकित हो गये, अपने जीवन में उन्होंने इतनी सुन्दर स्त्री न देखी थी। स्त्री के उस वाक्य का उत्तर देना उन्होंने उचित न समझा, पुरुष से उन्होंने कहा, “अपने अतिथियों का परिचय पाने का मुक्को अधिकार प्राप्त है ?”

पुरुष ने उत्तर दिया, भगवन् ! इस दास का नाम वीजगुप्त है और वह पाटलिपुत्र का एक सामन्त है, और यह स्त्री पाटलिपुत्र की सर्वसुन्दरी नर्तकी चित्रलेखा है।”

“वीजगुप्त और चित्रलेखा !” इस बार कुमारगिरि चित्रलेखा की ओर मुड़े। “नर्तकी चित्रलेखा, तुम्हारे कवित्व की कर्कशता पर उन्माद का आवरण है, तुम्हारे विष को तुम्हारा सौन्दर्य छिपाये हुए है। तुम मेरी अतिथि हो और तुमने मेरी अभ्यर्थना की है। आशीर्वाद देना मेरा धर्म है, भगवान् तुम्हें सुमति प्रदान करें !”

ममत्व कहते हैं, और माया वास्तव में ब्रह्म का अंश होते हुए भी वाट्च दृष्टि से उससे पृथक् है। ब्रह्म जब तक माया में लिप्त रहता है तब तक वह संसार के जाल में फँसा रहता है, माया को छोड़ देने के बाद वह स्वयम् हो जाता है। तुम और मैं—वास्तव में यहाँ कोई भेद नहीं है क्योंकि तुम भी ब्रह्म की अंश हो और मैं भी। पर भेद केवल इतना है कि तुम माया-मिश्रित ब्रह्म हो और मैं माया को छोड़ चुका हूँ। इसलिए मैं माया को जीवन से पृथक् रखना चाहता हूँ कि कहीं पीछे न चला जाना पड़े। और सुख कहते हैं तृप्ति को, यहाँ भी तुम भूलती हो। यदि तृप्ति ही संतोष का एक-मात्र साधन हो सके तो वह सुख अवश्य है, पर कर्म-जाल में फँसे रहने पर तृप्ति के साथ सन्तोष नहीं होता। ब्रह्म माया के संयोग से स्वयम् को भल जाता है और कर्म-जाल में भटकने लगता है। पर जिस समय वह माया को छोड़ देता है और अपने को जान लेता है, वह तृप्त हो जाता है और साथ ही उसे सन्तोष हो जाता है। दुःख-मय संसार को छोड़ देने ही को सुख कहते हैं।” कुमारगिरि थोड़ी देर तक रुके। फिर चित्रलेखा को उत्तर देने का अवसर दिये विना ही उन्होंने कहा। “और याद रखना! तर्क का अन्त नहीं होता, सत्य अनुभव की वस्तु है। अनुभव और विवास, विना इसके मनुष्य को ज्ञान प्राप्त करना असम्भव है।” इतना कहकर कुमारगिरि उठ खड़े हुए। “रात्रि अविक बीत रही है, विश्राम करना उचित होगा।”

चित्रलेखा को कुमारगिरि के इस उत्तर से सन्तोष न हुआ, कुमारगिरि भी यही अनुभव कर रहा था। पर साथ-साथ कुमारगिरि के व्यक्तित्व ने चित्रलेखा को अपनी ओर आकर्षित कर लिया। योगी ने नर्तकी में ज्ञान देखा, और नर्तकी ने योगी में सौन्दर्य, एक विचित्र बात थी। दोनों एक दूसरे से सन्तुष्ट न थे, पर प्रभावित अवश्य थे। दोनों ने एक दूसरे में आकर्षण देखा, योगी ने ज्ञान का और नर्तकी ने सौन्दर्य का। पर बीजगुप्त ने क्या देखा, यह वह स्वयम् ही न समझ सका।

कुमारगिरि और चित्रलेखा की बात-चीत से उसके हृदय में एक प्रकार की अशान्ति उत्पन्न हो गयी। अशान्ति सिद्धान्तों के सम्बन्ध में न थी। फिर किस प्रकार की अशान्ति थी, इसे वह जानने की लाख चेष्टा करते हुए भी न जान सका। उसके हृदय ने चित्रलेखा के हृदय में कुमारगिरि के प्रति आकर्षण की छाया का एक क्षीण आभास पा लिया था, पर वह इसपर विश्वास न कर सका।

कुमारगिरि ने कहा, “मेरा शिष्य विशालदेव आज रात को मेरी कुटी में विश्राम करेगा, उसकी कुटी खाली है, अतिथि वहाँ जासकते हैं।”

बीजगुप्त उठ खड़ा हुआ और साथ ही चित्रलेखा। चलते हुए चित्रलेखा ने कहा, “योगी ! तपस्या जीवन की भूल है, यह मैं तुम्हें बतलाये देती हूँ। तपस्या की वास्तविकता है आत्मा का हनन। अच्छा श्री चरणों को नर्तकी चित्रलेखा का प्रणाम।” इतना कहकर वह हँसते हुए बीजगुप्त के साथ कुटी के बाहर चली गई।

चित्रलेखा के जाने के बाद कुमारगिरि हँस पड़, “ठीक कहती हो ! तपस्या कहते हैं आत्मा के हनन को, और आत्मा ब्रह्म और माया के संप्रोग को कहते हैं। जिस समय आत्मा मर जाती है, माया का विकार लोप हो जाता है और सत्, चित्, आनन्द ब्रह्म रह जाता है। पर नर्तकी, तुममें यदि अनुभव होता, यदि तुम्हारी परिस्थिति दूसरी होती तो शायद तुम भी इस रहस्य को समझ सकतीं। तुममें ज्ञान है, पर उस ज्ञान का कोई पथ-प्रदर्शक नहीं है। मुझे तुमपर दुख है।”

विशालदेव बीजगुप्त और चित्रलेखा को अपनी कुटी में पहुँचा-कर गुरु की कुटी में लौट गया। शयन के पहले बीजगुप्त ने कहा, “चित्रलेखा !”

चित्रलेखा ने उत्तर दिया, “प्रियतम !”

बीजगुप्त ने एक ठण्डी श्वास लेकर कहा, “हृदय पर एक प्रकार का भार-सा मालूम होता है। ऐसा प्रतीत हो रहा है कि मानो हम दोनों

चित्रलेखा हँस पड़ी। उसके मधुर हास्य में मन को लुट्ठ कर देने वाला पराग था। “योगी! सुमति के अर्थ में भेद होता है, अनुराग का सुख विराग का दुःख है। प्रत्येक व्यक्ति अपने सिद्धान्तों को निर्धारित करता है तथा उनपर विश्वास भी करता है, प्रत्येक मनुष्य अपने को ठीक मार्ग पर समझता है और उसके मतानुसार दूसरे सिद्धान्त पर विश्वास करने वाला व्यक्ति गलत मार्ग पर है।”

अनुराग की दासी नर्तकी ने विराग के स्वामी योगी का सामना किया। क्रान्ति और शान्ति का मुकाबला था, जीवन और मुक्ति में होड़ थी। कुमारगिरि ने अविचलित भाव से उत्तर दिया, “पर सत्य एक है, वास्तविकता का ज्ञान है! मार्ग वही ठीक है जिससे शान्ति तथा सुख मिल सके।” कुमारगिरि का स्वर गम्भीर था, तपस्या का तेज नवयुवक योगी के सुन्दर वेश को आलोकित कर रहा था। कुमारगिरि की बड़ी-बड़ी आँखों में शान्ति की ज्योति थी।

योगी की आँखें नर्तकी की आँखों से एक भण के लिए मिल गयीं। वासना तपस्या के सामने काँप उठी, चित्रलेखा ने अनुभव किया कि जिस योगी के सामने वह बैठी हुई है वह बहुत उच्च कोटि का है। किर भी उसने साहस के साथ कहा, “शान्ति और सुख! शान्ति अकर्मण्यता का दूसरा नाम है, और रहा सुख, उसकी परिभाषा एक नहीं।”

योगी कुमारगिरि नर्तकी चित्रलेखा के मुख से दर्शन के विकृत सिद्धान्तों को तर्क-युक्त सुनकर स्तब्ध रह गये। जिस स्त्री से वे बातें कर रहे थे वह मुन्दरी होने के साथ विदुषी भी थी। उस स्त्री में विचार-शक्ति थी और प्रतिभा थी। प्रतिभा का मुकाबला प्रतिभा ही कर सकती है, और ज्ञान के क्षेत्र में प्रतिभा तथा मौलिकता का सर्वोच्च स्थान है। कुमारगिरि कुछ देर तक मौन रहे, इसके बाद उन्होंने धीरे से दृढ़ता के साथ कहा, “ठीक कहती हो, शान्ति अकर्मण्यता का दूसरा नाम है, और अकर्मण्यता ही मुक्ति है। जिसे सारा विश्व अकर्मण्यता कहता है वह वास्तव में अकर्मण्यता नहीं है। क्योंकि उस स्थिति में मस्तिष्क कार्य

किया करता है। अकर्मण्यता के अर्थ होते हैं जिस शून्य से उत्पन्न हुए हैं उसी में लय हो जाना। और वही शून्य जीवन का निर्धारित लक्ष्य है। और अभी तुमने सुख की परिभाषा की बात कही थी, उसे भी मैं ठीक मानता हूँ। पर सुख एक ही है, उसमें भेद नहीं होता। वह सुख क्या है, जब मनुष्य यही जान गया तब वह साधारण परिस्थिति से कहीं ऊपर उठ जाता है।” चित्रलेखा ने कुमारगिरि की बातों में सार देखा। उसे ऐसा प्रतीत होने लगा कि वह नवयुवक योगी की ओर स्वयम् ही बिना अपनी इच्छा के आकर्षित होती जाती है। उसने एक बार फिर साहस किया, “शून्य ! योगी, तुम्हारे उस शून्य पर विश्वास ही कौन करता है ? जो कुछ सामने है वही सत्य है और नित्य है। शून्य कल्पना की वस्तु है। शून्य की महत्ता की दुहाई देने वाले योगी ! क्या तुम अपने और मेरे ममत्व में भेद देखते हो ? यदि हाँ, तो तुम शून्य पर विश्वास नहीं करते, और यदि नहीं, तो तुम्हारा ज्ञान और अन्धकार, सुख और दुःख, स्त्री और पुरुष तथा पाप और पुण्य का भेद-भाव मिथ्या है। मनुष्य का जन्म देते हुए ईश्वर ने उसका कार्य-क्षेत्र निर्धारित कर दिया। उसने मनुष्य को इसलिए जन्म दिया है कि वह संसार में आकर कर्म करे, कायर की भाँति संसार की वाधाओं से मुख्य न मोड़ ले और सुख ! सुख तृप्ति का दूसरा नाम है। तृप्ति वहीं सम्भव है जहाँ इच्छा होगी, वासना होगी।”

योगी गम्भीर था, और नर्तकी मुसकरा रही थी। बीजगुप्त अपनी शिष्या, अथवा अपनी जीवन-संगिनी चित्रलेखा के मुख से अपने सिद्धान्तों को तर्क-पूर्वक सुनकर मन-ही-मन चित्रलेखा पर मुग्ध था, और विशालदेव नर्तकी के ज्ञान से चकित। दोनों कुमारगिरि के उत्तर की प्रतीक्षा कर रहे थे।

कुमारगिरि कुछ देर तक मौन-भाव से बैठे रहे, फिर उन्होंने गम्भीरतापूर्वक कहा, “ईश्वर ! ईश्वर और मनुष्य में कोई भेद नहीं। भेद केवल वाह्य है—सांसारिक है। माया और ब्रह्म के संयोग को ही

समाज के लिये हितकर है। इसीलिए ऐसी भी परिस्थितियाँ आ सकती हैं जब धर्म के विरुद्ध चलना ही समाज के लिए कल्याणकारक हो जाता है और धीरे-धीरे धर्म का रूप बदल जाता है।”

चाणक्य के वाक्य समाप्त होते ही विद्वन्मण्डली में घोर निस्तब्धता छा गयी। महाराज चन्द्रगुप्त ने गर्व से अपने मन्त्री की ओर देखा और फिर अपने सामने उपस्थित विद्वन्मण्डल की ओर। मन्त्री ने बहुत बड़ी बात कह डाली थी और उनकी बात में यथेष्ट सार था; फिर भी बात नयी थी, निर्धारित सिद्धान्तों के प्रतिकूल। इस बात का उत्तर कौन देगा, लोग इसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

विद्वन्मण्डली में बैठे हुए एक नवयुवक योगी ने शान्त भाव से उत्तर दिया, “राजन् ! ईश्वर मनुष्य का जन्म-दाता है और मनुष्य समाज का जन्म-दाता है। धर्म ईश्वर का सांसारिक रूप है, वह मनुष्य को ईश्वर से मिलाने का साधन है। धर्म की अवहेलना ईश्वर की अवहेलना है, सत्य से दूर हटना है। सत्य एक है, धर्म उसी सत्य का दूसरा नाम है। यदि नीति-शास्त्र धर्म के सिद्धान्तों के प्रतिकूल है तो वह नीति-शास्त्र नहीं वरन् अनीति-शास्त्र है। उचित और अनुचित न्याय और अन्याय—इन सब की कसौटी धर्म है, धर्म के अन्तर्गत सारा विश्व है।”

वयोवृद्ध मन्त्री—चाणक्य ने अपने सामने बैठे हुए नवयुवक योगी कुमारगिरि को इस प्रकार देखा जिस प्रकार एक दानव अपने सामने खड़े हुए बौने की ओर देखता है। वे मन-ही-मन हँसे, “धर्म की गुहता को स्वीकार करके उसकी दुहाई देनेवाले योगी, जानते हो धर्म को किसने जन्म दिया है !”

“ईश्वर ने, मनुष्य की अन्तरात्मा द्वारा !”

“और ईश्वर को ?”

लोग चाणक्य के इस प्रश्न से चकित हो गये। “ईश्वर को किसने जन्म दिया ?” कितना भयानक प्रश्न था ! जन-समुदाय में एक हल्का-

सा कोलाहल विकम्पित हो उठा। कुमारगिरि ने उसी प्रकार शान्त-भाव से उत्तर दिया, “ईश्वर अनादि है !”

“ठीक कहते हो योगी, ईश्वर अनादि है ! यह बात नयी नहीं है, प्रत्येक मनुष्य कहता है कि ईश्वर अनादि है। पर क्या तुम ईश्वर को जानते हो ? क्या यहाँ बैठा हुआ कोई भी व्यक्ति ईश्वर को जानता है ?” चाणक्य का स्वर गम्भीर था और उसके नेत्रों में ज्योति थी। बिना किसी के उत्तर की प्रतीक्षा किये हुए ही चाणक्य ने और कहा, “हाँ ईश्वर अनादि है, पर उस ईश्वर को, मैं दावे के साथ कहता हूँ, कोई नहीं जानता—वह कल्पना से परे है। वह सत्य है, पर इतना प्रकाशवान कि मनुष्य के नेत्र उसके आगे नहीं खुले रह सकते। उस सत्य को जानने का प्रयत्न करो, उस ईश्वर को पाने के लिए घोर तपस्या करो, पर सब व्यर्थ है—निष्फल है। यदि तुम ईश्वर को ही जान सको, यदि तुम्हारी कल्पना में ही वह अखण्ड और निःसीम अनन्त का रचयिता आ सके तो फिर वह ईश्वर कौसा ? पर योगी, हमारा और तुम्हारा ईश्वर जिसकी हम पूजा करते हैं उस ईश्वर से भिन्न है। हमारा और तुम्हारा ईश्वर कल्पना-जनित ईश्वर है। अपनी आवश्यकता को पूरी करने के लिए ही समाज ने उस ईश्वर को जन्म दिया है।”

चाणक्य ने रुक्कर अपने चारों ओर देखा, गहरा सन्नमटा छाया हुआ था। योगी कुमारगिरि के नेत्र बन्द थे मानो वह किसी गहरे विचार में मग्न था। चाणक्य आसन से उठ खड़े हुए, खड़े होकर उन्होंने सभा-मण्डल में अपने चारों ओर देखा। उनकी उस दृष्टि में गर्व था और अपने ऊपर विश्वास। उनकी आँखें सभामण्डल में बैठे हुए अखण्ड विद्वानों को चुनौती दे रही थीं कि उनमें से कोई भी व्यक्ति उनका लोहा ले। योड़ी देर तक उत्तर की प्रतीक्षा करने के बाद चाणक्य ने फिर कहा, “अभी बात अधूरी ही है। हाँ, मैंने यह कहा था कि हमारा और तुम्हारा ईश्वर जिसकी हम पूजा करते हैं कल्पना-जनित चीज़ें हैं और समाज द्वारा निर्मित हैं। उसके, भिन्न-भिन्न समाजों

के जीवन पर दुःख के वादल मँडरा रहे हैं। चित्रलेखा ! कुमारगिरि योगी है और संभवतः उसमें आकर्षण शक्ति भी है।”

चित्रलेखा का मुख एक क्षण के लिए पीला पड़ गया। पर उसने सम्हलकर उत्तर दिया, “प्रियतम ! कुमारगिरि योगी है और मूर्ख है। उसकी आत्मा मर चुकी है।”

चित्रलेखा ने वीजगुप्त को और अपने को धोखा देने का प्रयत्न किया। उसने फिर कहा, “कुमारगिरि निर्जन का निवासी है और हम दोनों कर्म-क्षेत्र के अभिनेता हैं। कुमारगिरि ने वासनाओं का हनन कर दिया है और हम दोनों वासनाओं पर विश्वास करते हैं। कुमारगिरि के जीवन का लक्ष्य है कल्पना का शून्य और हम दोनों के जीवन का लक्ष्य है मस्ती का पागलपन। प्रियतम ! संसार में कोई भी व्यक्ति हम दोनों के बीच में नहीं आ सकता।”

वीजगुप्त का मुख प्रसन्नता से चमक उठा, “भगवान् ऐसा ही करे।”

चित्रलेखा ने वीजगुप्त को धोखा दे दिया, पर वह अपने को धोखा न दे सकी, उसने मन-ही-मन कहा, “पर कुमारगिरि सुन्दर अवश्य है।”

पाँचवाँ परिच्छेद

महायज्ञ के अभिमन्त्रित धूम्र से सुवासित राज-प्रासाद के विशाल ग्रांगण में समाट् चन्द्रगुप्त मौर्य के अतिथि आसीन थे। रत्न-जटित स्वर्ण के राज-सिंहासन पर महाराज विराजमान थे और उनका मुख पूर्व की ओर था। उनके दक्षिण ओर क्रम से यथायोग्य विशाल सामाज्य के आमंत्रित सामन्तगण बैठे थे और वाम पार्श्व में राज्य के प्रधान कर्मचारी। सामने कर्मकाण्डी ब्राह्मणों तथा तपस्वियों का जमघट था।

यह सभा, प्रवा के अनुसार, महायज्ञ के बाद दर्शन पर तर्क करने के लिए एकत्र हुई थी। महाराज चन्द्रगुप्त ने हँसकर अपने प्रधान मन्त्री चाणक्य की ओर देखा, “नीति-कुशल मंत्रिवर ! आपका नीति-शास्त्र अनेक स्थलों पर धार्मिक सिद्धान्तों की अवहेलना करता है। इस विरोध का क्या कारण है ? क्या आप यह बतलाने की कृपा करेंगे कि नीति-शास्त्र धर्म के अन्तर्गत है अथवा नहीं ?”

चाणक्य ने उठकर अपने सामने आसीन विद्वन्मण्डली को मस्तक नमाया, और फिर समाट् को अभिवादन करके वे बैठ गये। बैठकर उन्होंने उत्तर दिया, “महाराज का कथन सर्वथा उचित है। मेरे नीति-शास्त्र में कहीं-कहीं निर्धारित धर्म की रूढ़ियों के विरोधी सिद्धान्त मिलते हैं, यह स्पष्ट है और यह मैं मानता हूँ। पर उसके साथ ही मैं यह बतला देना चाहता हूँ कि धर्म समाज द्वारा निर्मित है। धर्म ने नीति-शास्त्र को जन्म दिया है, वरन् इसके विपरीत नीति-शास्त्र ने धर्म को जन्म दिया है। समाज को जीवित रखने के लिए समाज-द्वारा निर्धारित नियमों को ही नीति-शास्त्र कहते हैं, और इस नीति-शास्त्र का आधार तर्क है। धर्म का आधार विश्वास है और विश्वास के बन्धन से शत्येक मनुष्य को बाँधकर उससे अपने नियमों का पालन कराना ही

ध्यानावस्थित योगी उस समय किसी दूसरे संसार में था। निराश होकर चित्रलेखा ने उधर से आँखें हटा लीं।

सारंगी ने मृदंग के गम्भीर ताल के साथ कल्याण के स्वर भरे, वह हल्का-सा हर्ष से पूरित जनरव जो चित्रलेखा के प्रवेश के साथ ही आरम्भ हुआ था एक क्षण में शान्त हो गया। चित्रलेखा के सुन्दर कमल-से कोमल पैरों ने धुंधुरूओं के साथ सम पर ताल दी और नृत्य आरम्भ हो गया। चित्रलेखा जिस स्थल पर जाती थी विद्युत् की भाँति चमक उठती थी, मृदंग का ताल मानो मेघों का गम्भीर गर्जन था। चारों ओर गहरा सन्नाटा छाया हुआ था। प्रत्येक व्यक्ति मन्त्रमुग्ध-सा कला के सर्वोच्च प्रदर्शन को निरख रहा था।

एकाएक कुमारगिरि ने अपने नेत्र खोले। उनके नेत्रों में उस समय एक प्रकार की दैवी ज्योति देवीप्यमान हो रही थी। वे उठ खड़े हुए, उठ कर उन्होंने गम्भीरतापूर्वक कहा, “मन्त्री चाणक्य ! मैं ईश्वर को जानता हूँ; और तुम्हें तथा सारी सभा को सन्तुष्ट करने के लिए इसी स्थल पर ईश्वर को दिखला भी सकता हूँ।”

सभा का सन्नाटा भंग हो गया। कुछ लोगों ने कुमारगिरि के ये चाक्य सुने और कुछ ने नहीं; न सुनने वालों में अधिकतर नवयुवक सामन्त-गण थे जो नृत्य देखने में व्यस्त थे। उन्होंने चिल्लाकर कहा, “उस योगी को बिठला दो !”

चित्रलेखा ने भी योगी के वाक्य नहीं सुने। वह उस समय नृत्य में व्यस्त थी। उसके पैरों में अजीब जादू था, कला का अभूतपूर्व कौशल था। महाराज चन्द्रगुप्त ने चाणक्य की ओर एक अर्थपूर्ण दृष्टि डाली, और चाणक्य ने समाइट की ओर। योगी कुमारगिरि एक बहुत बड़ी बात करने पर तत्पर थे, चाणक्य ने उठकर कहा, “सामन्तगण तथा विद्वानो ! योगी कुमारगिरि का दाना है कि वे ईश्वर को जानते और इसी स्थल पर इसी समय सब लोगों को ईश्वर का दर्शन भी करा सकते हैं; महाराज सहमत हैं, अतः थोड़ी देर के लिए नृत्य का स्थगित करा देना ही उचित है।”

इस बार सामन्तों ने यह सुना और साथ ही चित्रलेखा ने। चित्रलेखा ने रुक्कर कोध-भरे नेत्रों से चाणक्य की ओर देखा और उससे दुगने कोध के साथ कुमारगिरि की ओर। इसके बाद वह चुपके से एक कोने में जाकर बैठ गयी। चाणक्य ने उठकर कहा, “योगी कुमारगिरि, हम सब ईश्वर को देखने के लिए प्रस्तुत हैं।”

कुमारगिरि ने अपना आसन छोड़ दिया। उनके उठने के साथ सभामण्डल में धोर निस्तब्धता छा गई। उठकर वे सभामण्डल के बीचबीच खड़े हो गये। कुछ देर के लिए उन्होंने अपने नेत्र बन्द कर लिये, इसके बाद उन्होंने कहा, उपस्थित पण्डितों और सामन्तों, मेरी ओर देखो!

लोगों ने देखा कि योगी कुमारगिरि जहाँ खड़े थे उसी के पास यज-वेदी से एक अग्नि-शिखा निकली और वह शिखा छत की ओर बढ़ने लगी। उस अग्नि शिखा का प्रकाश ग्रीष्मऋतु के मध्याहन-कालीन सूर्य के प्रकाश से कहीं अधिक तीव्र था। छत पर पहुँचकर वह उसको भेद यदी और आकाश की ओर बढ़ी। धीरे धीरे वह पतली-सी अग्नि-शिखा आकार में बढ़ने लगी और उसका प्रकाश इतना तीव्र हो गया कि लोगों के नेत्र उस प्रकाश को न सहन कर सकने के कारण बन्द होने लगे। पर आश्चर्य की बात यह थी कि उस अग्नि-शिखा में ताप न था, केवल प्रकाश था। कुमारगिरि ने कहा, “यह सत्य है।”

चाणक्य चिल्ला उठे, “योगी, तुम भूड़ बोलते हो। वहाँ तो कुछ नहीं है।”

इस बार लोगों ने चाणक्य की ओर आश्चर्य से देखा। योगी कुमारगिरि ने कहा, “क्या वयोवृद्ध मंत्री सत्य के प्रकाश को नहीं देख सकते?”

चाणक्य ने फिर कहा, “कैसा प्रकाश? वहाँ तो कुछ नहीं है।”

कुमारगिरि ने चाणक्य को कोई उत्तर न दिया। उन्होंने फिर कहा, “और देखो!”

इस बार वह अग्नि-शिखा धुंधली होने लगी और अग्नि-पुञ्ज में परिणत हो गई। उस अग्नि-पुञ्ज में लोगों ने अनेकों प्राणी देखे जो

की कल्पना के अनुसार, भिन्न-भिन्न रूप हैं। अब आती है अन्तरात्मा की बात, यहाँ भी निर्धारित मत अधिक अंश में भ्रमात्मक है। अन्तरात्मा ईश्वर द्वारा निर्मित नहीं है, वरन् समाज द्वारा निर्मित है। यदि वास्तव में वह ईश्वर-प्रदत्त होती तो भिन्न-भिन्न समाज के व्यक्तियों की अन्तरात्माएँ भिन्न-भिन्न न होतीं। ईश्वर एक है, यदि वास्तव में उसने धर्म के नियम बनाये हैं तो प्रत्येक व्यक्ति पर एक ही नियम लागू होता है। पर बात ऐसी नहीं है। एक समाज के व्यक्ति की अन्तरात्मा प्रायः दूसरे समाज के व्यक्ति की अन्तरात्मा के अनुसार नहीं होती। मनुष्य की अन्तरात्मा केवल उसी बात को अनुचित समझती है जिसको समाज अनुचित समझता है। इसलिए यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि अन्तरात्मा समाज द्वारा निर्मित है। मनुष्य के हृदय में समाज के नियमों के प्रति अन्विश्वास और पूर्ण श्रद्धा को ही अन्तरात्मा कहते हैं। समाज से पृथक् उसका कोई अस्तित्व ही नहीं है?"

चाणक्य आसन पर बैठ गये। विद्वानों में बहुतों ने चाणक्य के अकाटच तर्कों से प्रभावित होकर उनके आगे मस्तक नवा दिया।

कुमारगिरि ने चाणक्य के ये वाक्य सुने या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता; वह अपने विचारों में उस समय भी तल्लीन था। उसके नेत्र बन्द थे और उसके शान्त मुख पर एक अलौकिक तेज था पर विजय उस समय चाणक्य की ही रही, कुमारगिरि लोगों के मतानुसार चाणक्य के अकाटच तर्कों का कोई उत्तर न दे सके थे। चन्द्रगुप्त मुसकरा रहे थे, थोड़ी देर तक और प्रतीक्षा करने के बाद उन्होंने अपने सहचर की ओर संकेत किया। उसने उसी समय उठकर कहा, "वाद-विवाद का अन्त हो गया, अब नृत्य आरम्भ होगा।" निस्तब्धता भंग हो गयी, उपस्थित सामन्तों ने हर्षध्वनि की।

श्रुंगार-गृह से उसी समय चिवलेखा ने सभा-मण्डल में प्रवेश किया। आभूषणों की झंकार में एक प्रकार का विचित्र मंगीत था। धर्म का नीरस तथा शुष्क वायुमण्डल पराग से भरे सौंदर्य की मस्ती से

विकस्थित हो उठा; काँपती हुई उषा के धुंगलेपन को चीरते हुए मानो प्रातःकालीन सूर्य के अरुण-प्रकाश ने प्रवेश किया। हेमन्त के शीतल तथा शुष्क वायु में मधुमास के हल्के ताप और मतवाले सौरभ का समावेश हुआ। सारा बातावरण ही बदल गया।

प्रांगण के बीचोबीच खड़ी होकर चित्रलेखा ने सब से प्रथम सधार-चन्द्रगुप्त को अभिवादन किया। उस समय उसके सौंदर्य में अभूतपूर्व आकर्षण था। उसका मुख पूर्णिमा के चन्द्रमा की भाँति था और उसकी लहराती हुई वेणी नाग की भाँति थी जो विष से त्रस्त होकर चन्द्रमा से उसका अमृत छीनने को उससे लिपट गया हो। उसकी वेणी में गुंथे हुए मुक्ता-जाल इस प्रकार शोभित हो रहे थे मानो चन्द्रमा को संकट में देखकर तारिकावलि पंक्ति में बैंधकर काले नाग से भिड़ गई थी। उसके शरीर पर महीन रेशम का दुपट्टा पड़ा हुआ था जिसका होना अयवा न होना दोनों ही बराबर थे। उसके नीचे उसकी महीन जरी से कढ़ी हुई रेशम की चोली थी जिससे उसके सुडौल उरोजों की आभा फूट निकलती थी। स्वर्ण तारों का लहँगा वह पहिने हुए थी जो रात्रि के उज्ज्वल प्रकाश में चकाचौंथ उत्पन्न कर रहा था। रत्न-जटित आभूषणों से वह लदी थी। उस समय वह साक्षात् लक्ष्मी रूप में थी। महाराज को अभिवादन करने के बाद चित्रलेखा ने उपस्थित सामन्तों की ओर अपनी हँसती हुई दृष्टि डाली; सामन्तों का उल्लास-सभामण्डल में प्रतिघ्वनित हो उठा। प्रत्येक उपस्थित सामन्त को उसकी दृष्टि कृतज्ञ करने के बाद बीजगुप्त पर रुक गयी। इस बार उसकी आँखों की मुस्कराहट उसके मुख पर भी दौड़ गई। बीजगुप्त भी मुस्कराया, चित्रलेखा के मौन अभिवादन का मौन उत्तर मिल गया। चित्रलेखा ने अब विद्वन्मण्डली के सामने अपना मस्तक नमाया। जिस समय वह अपनी दृष्टि उस ओर से हटा रही थी उसने कुमारगिरि को देखा और उसकी दृष्टि उस नवपुवक योगी पर रुक गई। थोड़ी देर तक उसकी दृष्टि कुमार-गिरि पर इस प्रतीक्षा में रुकी रही कि वह उसकी ओर देखे, पर

चाणक्य ने सम्राट् की ओर देखा, और सम्राट् ने चाणक्य को कुछ संकेत किया। उसके बाद चाणक्य ने बढ़कर विजय का मुकुट चित्रलेखा के मस्तक पर रख दिया। “नर्तकी चित्रलेखा! आज की विजय तुम्हारी रही; तुमने सत्य के उस रूप को जिसकी आत्म-शक्ति के दुरुपयोग द्वारा भ्रम के आवरण में छिपाने का प्रयत्न योगी कुमारगिरि ने किया था, हम लोगों को दिखला दिया।” फिर उन्होंने कुमारगिरि से कहा “और योगी तुमने अनुचित किया। तुम्हें इसका दण्ड मिलना चाहिये; परन्तु तुम्हें दण्ड देने का अधिकार चित्रलेखा को होगा।”

कुमारगिरि के नेत्र कोध से लाल हो गये, “इस सभा में कोई भी व्यक्ति मुझे पराजित नहीं कर सकता और न मुझको दण्ड देने का कोई व्यक्ति साहस ही कर सकता है।” इतना कहकर योगी कुमारगिरि तन कर खड़े हो गये।

योगी का रौद्र-वेश देखकर सारी सभा काँप उठी, पर चित्रलेखा हँस पड़ी। मुसकराते हुए वह योगी की ओर बढ़ी—सभामण्डल में एक हल्का-सा कोलाहल उठ पड़ा। बढ़ते समय चित्रलेखा ने सारंगी बालों को कुछ संकेत किया। कुमारगिरि के पास पहुँचकर वह रुकी। “योगी! तुम्हें दण्ड देने का अधिकार मुझको सौंपा गया है। और मैं तुमको दण्ड देने पर तुली हुई हूँ। मेरा दण्ड देने का साहस देखो!” इतना कहकर उसने अपना सोने का विजय-मुकुट कुमारगिरि के मस्तक पर रख दिया।

उसी समय सारंगी में ईमन की गत बजी, और चित्रलेखा विजली की भाँति सम पर चमक उठी। नृत्य आरम्भ हो गया—लोगों ने हर्षध्वनि की।

कुमारगिरि अबाक् खड़ा रह गया। चित्रलेखा के दूर चले जाने पर उसे होश आया, उस समय सारी सभा हर्ष-ध्वनि कर रही थी। “दण्ड और पराजय! इनपर विचार करना होगा!” योगी कुमारगिरि कह उठा। और तेजी के साथ वह सभा-मण्डल के बाहर चला गया।

छठा परिच्छेद

अपमानित और पराजित योगी को नया अनुभव हुआ। उस अनुभव की तीव्रता से वह निस्तेज हो गया। उसने कभी कल्पना तक न की थी कि वह पराजित हो सकता है, और फिर पराजित होना एक स्त्री से! और वह स्त्री भी कौन? एक साधारण-सी नर्तकी! कुमारगिरि के हृदय में एक हलचल उत्पन्न हो गयी। उसने परिस्थितियों का विश्लेषण किया। विजयी होकर भी वह पराजित हो गया। उसने विजय पाई थी महाराज चन्द्रांगुप्त के विशाल-साम्राज्य के चुने चुने विद्वानों पर, वह पराजित हुआ था अन्धकार से। और अन्धकार से पराजित होना तो स्वाभाविक ही है। स्त्री से तो बड़े-बड़े साधक पराजित हुए हैं। पर वे सब स्त्री के क्षेत्र में पराजित हुए थे, ज्ञान में नहीं! कुमारगिरि की परिस्थिति विचित्र थी।

विजय और पराजय! दोनों स्वाभाविक हैं। पर यह पराजय भी विचित्र थी; स्त्री ने अपने ज्ञान से कुमारगिरि को शायद पराजित नहीं किया था, उसने कुमारगिरि को पराजित किया था अपनी उदारता से। सोने का विजय-मुकुट कुमारगिरि के मस्तक को अब भी सुशोभित कर रहा था, कुमारगिरि को उस मुकुट की याद हो आयी। कुमारगिरि को क्रोध हुआ, उसने मुकुट अपने सिर से उतारकर पृथ्वी पर पटक दिया। इसके बाद उसने फिर सोचना आरम्भ किया। “पराजय!” यह शब्द उसके क्षेत्र में न था। विजय के लिए उसने सांसारिक सुखों को तिलाङ्जलि दे दी थी, विजय के लिए ही उसने गहरी तपस्या की थी; फिर भला पराजय क्यों? कुमारगिरि उठ खड़ा हुआ, “नहीं, पराजय असम्भव है! मैं पराजित हो ही नहीं सकता। क्या मेरी साधना का अन्त पराजय होगा? कभी नहीं, कभी नहीं!”

उसी में एक और से निकलते थे और दूसरी ओर लोप हो जाते थे । उसी अग्नि-पुञ्ज में लोगों ने विशाल नगर बनते और नष्ट होते देखे । उन्होंने उसमें पृथ्वी, जल, वायु तथा आकाश देखा । धीरे-धीरे वह सब लोप हो गया और वही अग्नि-पुञ्ज रह गया ।

योगी कुमारगिरि ने कहा, “और यह ईश्वर है !”

चाणक्य इस बार पागल की भाँति चिल्ला उठे । “मुझे कुछ नहीं दिखलाई देता ! योगी, मैं किर कहता हूँ कि तुम झूठ बोलते हो ।”

कुमारगिरि ने आँखें बन्द कर लीं—सब कुछ लोप हो गया । आँखें खोलकर उन्होंने हँसते हुए कहा, “मन्त्री ! मैं यह कहूँगा कि तुम झूठ बोलते हो । और मेरे इस कथन की साक्षी सारी सभा है । यहाँ पर उपस्थित सज्जन तुम्हें इसका उत्तर देंगे ।”

लोग चिल्ला उठे । “मन्त्री झूठ बोलते हैं क्योंकि हमने सत्य और ईश्वर दोनों को देखा है ।”

मर्माहित चाणक्य ने इस बार चन्द्रगुप्त की ओर देखा । सम्राट् ने भी कहा, “मन्त्री ! कुमारगिरि झूठ नहीं बोलते । हमने सत्य और ईश्वर को देखा है ।”

मेरी आँखों ने आज प्रथम बार मुझको धोखा दिया है ! नवयुवक योगी ! मैं हारा और तुम जीते ।” इनना कहकर चाणक्य बैठ गये ।

योगी कुमारगिरि चलने को पैर उठाये ही थे कि उन्हें नर्तकी चित्र-लेखा के शब्द सुनाई दिये, “योगी ! ठहरो ! मेरे भ्रमों का निवारण अभी नहीं हुआ ।”

लोगों की आँखें चित्रलेखा की ओर धूम पड़ीं, जन-समुदाय का कौतूहल बढ़ गया । योगी कुमारगिरि को रुक जाना पड़ा । आगे बढ़कर चित्रलेखा ने कहा, “योगी, मैंने भी तुमने जो कछ दिखलाया था वह नहीं देखा । मन्त्री चाणक्य को सब लोग झूठा ठहरा सकते हैं पर मैं नहीं । मैं तुमसे सत्य तथा ईश्वर की दुहाई देकर पूछती हूँ कि क्या वास्तव में तुमने

भी सत्य और ईश्वर के उस रूप को देखा है जिसको तुमने सारी सभा को दिखलाया है ?”

नर्तकी की आँखें योगी के आँखों से मिल गयीं। योगी की आँखों में विश्वास का तेज था और तपस्या का बल था; और नर्तकी की आँखों में उल्लास की चमक और अविश्वास की आभा थी। कुमारगिरि के मुख से अचानक ही निकल पड़ा, “नहीं !”

लोग चौंक उठे। मन्त्री चाणक्य आहलाद से विहवल होकर उठ खड़े हुए, पर चित्रलेखा ने उस ओर ध्यान न दिया, “योगी ! क्या यह ठीक है कि तुमने अपनी आत्मशक्ति से सारे जनमण्डल को प्रभावित करके अपनी कल्पना द्वारा निर्मित सत्य तथा ईश्वर का रूप दिखलाया है ? भूठ मत बोलना, मैं सत्य तथा ईश्वर की दुहाई देकर तुमसे यह प्रश्न पूछ रही हूँ—और यह भी याद रखना, तुम योगी हो !”

कुमारगिरि ने कुछ सोचकर उत्तर दिया, “ठीक कहती हो !”

यह प्रश्नोत्तर सुनकर लोग स्तब्ध रह गये। चित्रलेखा ने फिर पूछा, “एक प्रश्न और है। क्या यह भी ठीक है कि जिन लोगों की आत्म-शक्ति इतनी प्रबल है कि वे तुम्हारी आत्म-शक्ति से प्रभावित नहीं हो सके उन लोगों को तुम अपनी कल्पनाजनित चीजों को नहीं दिखला सके ?”

सभा में विचित्र हलचल मच गई। योगी कुमारगिरि को अपनी स्थिति का आभास हो गया, कुछ देर तक सोचकर उन्होंने उसी तरह शान्त-भाव से उत्तर दिया, “जो ईश्वर पर विश्वास करता है उसी में आत्म-शक्ति है; नास्तिक में आत्म-शक्ति नहीं होती—यदि मनुष्य में कल्पना विद्यमान है तो वह कल्पना अवश्य प्रभावित होगी, पर जहाँ कल्पना मर चुकी है, नास्तिकता का काला आवरण जहाँ कल्पना का दम घोट चुका है वहाँ मनुष्य के लिए ईश्वर को जान सकना असम्भव हो जाता है। जिन लोगों ने इस समय सत्य और ईश्वर को नहीं देखा है उनकी कल्पनाएँ मर चुकी हैं—वे नास्तिक हैं और नास्तिक में आत्म-शक्ति का होना असम्भव है।”

कुमारगिरि की आँखें धूल में पड़े हुए स्वर्ण-मुकुट पर पड़ीं। कुछ देर तक अविचलित भाव से उसने मुकुट की ओर देखा; उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो मुकुट कह रहा था, “योगी ! तुम पराजित नहीं हुए ! तुम विजयी हो !” योगी के शरीर में एक प्रकार का कम्पन-सा दौड़ गया। कुमारगिरि धोरे-धीरे उस मुकुट की ओर बढ़ा, उसके पास पहुँचकर वह रुक गया। विजय-युक्त पराजय ! कितनी विचित्र समस्या है ! क्या मुझको इस विजय उपहार पर कोई अधिकार है ! सारी सभा की दृष्टि में मैं उस स्त्री से पराजित हुआ हूँ, यह मुकुट उस स्त्री को पहिना दिया गया था। यह मुकुट जूठन है !” कुमारगिरि ने अपना मुख फेर लिया। उसने वहाँ से चले जाने का प्रयत्न किया, पर उसके पैर न उठे। मुकुट वहाँ पड़ा हुआ था, चाँदनी का उज्ज्वल तथा श्वेत प्रकाश उसकी शोभा को सहस्र-गुना बढ़ा रहा था। कुमारगिरि ने मुकुट की ओर फिर देखा। “पर मुझको यह मुकुट कैसे मिला ? जिसको सारी सभा विजयी समझती है, यदि वही अपने को मुझसे पराजित समझे तो फिर विजय किसकी ? मेरी ! न तर्की ! तुमने मुझसे पराजय स्वीकार की—यह क्यों ?”

“इसलिए कि मैं तुमसे पराजित हुई !”

योगी चौंक उठा। सामने चित्रलेखा खड़ी थी, उसके मुख पर मधुर मुसकान किलोल कर रही थी, उसकी आँखें हँस रही थीं। “विचित्र वात है योगी कि पराजित प्रफुल्लित है और विजयी व्यग्र है !”

कुमारगिरि ने कुछ कहा नहीं, वह मुकुट की ओर देख रहा था।

“यह क्या ? विजय-मुकुट धूल में पड़ा है। योगी क्या तुम्हें अपनी विजय स्वीकार नहीं है ?” चित्रलेखा की मुसकराहट लोप हो गयी थी। बड़ा कठिन प्रश्न था। आत्माभिमानी योगी के लिए अपनी पराजय स्वीकार करना असम्भव था। फिर भी उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

चित्रलेखा ने मुकुट उठा लिया। “उद्धतयोगी ! तुम्हें पराजित करना मेरे लिए असम्भव है, इतना विश्वास रखो !” उसने मुकुट कुमारगिरि के मस्तक पर रख दिया। जिस मुकुट को वह फेंक चुका था उसको फिर से

पहनते हुए कुमारगिरि हिचका नहीं, उसने इसका विरोध तक न किया। उस समय कुमारगिरि ने नेत्र बन्द कर लिये थे, वह कुछ सोच रहा था।

“योगी ! क्या सोच रहे हो ?”

इस बार कुमारगिरि ने अपने नेत्र खोले, “नर्तकी चित्रलेखा ! तुम समझती हो कि तुमने मुझे पराजित किया है, इसीलिए तुम वेर-वेर मेरा अपमान कर रही हो, पर तुम्हारी यह चेष्टा तथा धारणा व्यर्थ है। योगी संसार छोड़ चुका है, मानापमान से उसका कोई सम्बन्ध नहीं रह गया। किर तुम यह सब व्यर्थ कर रही हो !”

चित्रलेखा ने शान्त भाव से उत्तर दिया, “योगी ! तुम्हारी यह धारणा अनुचित है ! मैं फिर कहती हूँ कि तुम्हें पराजित करने की न तो मुझमें क्षमता है और न शक्ति है !”

कुमारगिरि ने चित्रलेखा पर अपनी आँखें गड़ा दीं। कुछ क्षणों के लिए उसने अपने सामने खड़ी हुई विचित्र स्त्री—चित्रलेखा को अनिमेष दृगों से देखा, उसका पीला मुख एकाएक लाल हो गया। उसका निश्चल तथा स्थिर शरीर एकाएक सिहर उठा। उसने चित्रलेखा का कोमल हाथ जोर से पकड़कर कहा, “नर्तकी ! सच कहना कि फिर तुम यहाँ छाया की भाँति क्यों चली आई हो ? इस प्रकार यहाँ भी मुझको लज्जित करने में तुम्हारा क्या ध्येय है ?”

आवेश में कुमारगिरि का सारा शरीर काँप रहा था। चित्रलेखा बिलकुल मिली खड़ी थी, उसके नेत्र कुमारगिरि के नेत्रों से मिले हुए थे, चित्रलेखा के अलसाये-से नेत्रों में न जाने कहाँ की मदिरा थी। मुसकराते हुए उसने उत्तर दिया, “मैं आई हूँ, अपने ऊपर विजय पाने वाले से दीक्षित होने के लिए !”

सौरभ से भरा मधुमास था, कम्पन से भरा मलय था, चाँदनी हँस रही थी, तारकावलि मुसकरा रही थी। निर्जन प्रदेश में और रात्रि के गहरे सन्नाटे में योगी कुमारगिरि के सामने नर्तकी चित्रलेखा खड़ी थी।

कुमारगिरि का आवेश लोप हो गया। वह सहमकर कुछ पीछे हट

गया, दबी हुई जवान से उसने कहा, “सुन्दरी ! मुझसे दीक्षित होने के अर्थ पर भी कभी तुमने विचार किया है ?”

चित्रलेखा हँस पड़ी । उसकी हँसी का माधुर्य विचित्र था, उसमें सजीव सौन्दर्य से भरा संगीत था, “हाँ एक बार नहीं अनेक बार !”

कुमारगिरि ने असाधारण सुन्दरी चित्रलेखा से अपनी आँखें हटा लीं। “नहीं ! तुम मेरा प्रयोजन नहीं समझों । मेरी दीक्षा के अर्थ हैं संसार के समस्त भोग-विलास तथा वासनाओं को सदा के लिए तिलाङ्गजलि दे देना । जिस अकर्मण्यता से तुम घृणा करती हो उसी अकर्मण्यता को अपनाना, जिस शुष्क साधना की तुम हँसी उड़ाती हो उसी शुष्क साधना में अपने को मल शरीर को तपाना ।”

चित्रलेखा मौन थी । वह यह सोच रही थी कि वह क्या उत्तर दे । नर्तकी होते हुए भी, दर्शन के विकृत सिद्धान्तों की दासी होते हुए भी चित्रलेखा को झूठ बोलने का अभ्यास न था । उसकी आत्मा का उत्तर था, “नहीं,” उसके हृदय की प्रेरणा थी “हाँ !” हृदय ने विजय पाई, उसने चित्रलेखा को जीवन का सबसे बड़ा झूठ बोलने को बाध्य किया, “योगी ! इस सबके लिए तैयार होकर आई हूँ ।”

“इसके लिए तैयार होकर आई हो ?” कुमारगिरि निष्प्रभ हो गया । “सुन्दरी, तुम भूल रही हो । जो कुछ तुम करने के लिए प्रस्तुत हो वह बड़ा कठिन काम है । प्रत्येक व्यक्ति यह नहीं कर सकता । जानती हो, ममत्व का विस्मरण बड़ा दुःसाध्य कार्य है । तुम इसे न कर सकोगी !”

चित्रलेखा गम्भीर हो गई, “ठीक कहते हो योगी, यह कठिन अवश्य है पर असम्भव नहीं है ।”

योगी कुमारगिरि ने एक बार सिर से पैर तक चित्रलेखा को देखा । चित्रलेखा के शरीर पर वही वस्त्र थे जो वह नृत्य के समय पहिने हुए थी, वही सौन्दर्य था और वही मादकता । चित्रलेखा की आँखों में आकर्षण था और उल्लास था । कुमारगिरि ने मन-ही-मन कहा, “यह स्त्री असाधारण सुन्दरी है !” आज तक कुमारगिरि ने सौन्दर्य की ओर ध्यान न

दिया था, प्रेम और वासना का क्षेत्र उसके लिए नया था। उस सौन्दर्य से योगी के हृदय में एक हल्का-सा कम्पन हुआ। प्रथम बार योगी ने इस कम्पन से युक्त सांसारिक सुख का अनुभव किया। यह सुख कितना विचित्र था! उसने कहा, “सुन्दरी चित्रलेखा! तुम्हें दीक्षा देना कहाँ तक उचित है, इसपर विचार करना होगा। मैं अभी कुछ नहीं कह सकता।”

“अभी तुम कुछ नहीं कह सकते योगी!” चित्रलेखा ने कुमारगिरि के शब्द दुहराए। “क्यों? क्या तुम्हें मुझपर विश्वास नहीं या तुम्हें अपने पर ही विश्वास नहीं है? योगी, यह याद रखना, मुझे दीक्षा देने या न देने का अर्थ तुम्हारे लिए चाहे कुछ भी न हो, पर मेरे लिए यह जीवन-मृत्यु की समस्या है, और इस दृष्टि से तुम्हारा बहुत बड़ा उत्तरदायित्व है। यदि किसी के पास जल है और वह व्यक्ति पिपासाकुलित अतिथि को जल देने से इंकार कर उसे प्यास से तड़प-तड़पकर मरते देखता है, तो यह समझ रखना, वह बहुत बड़े पाप का भागी होता है। उसकी आत्मा को सुख मिलना असम्भव है।”

इस उत्तर से कुमारगिरि सहम उठे। “सुन्दरी! तुमसे सारी बारें स्पष्ट-रूप से कह दूँ। तुम्हें दीक्षा देने में मुझे इसलिए संकोच होता है कि तुममें दर्शन के विकृत सिद्धान्तों ने जड़ जमा रखी है। उन सिद्धान्तों के साथ तर्क है और उन सिद्धान्तों पर विश्वास करने वाले व्यक्ति में प्रभाव! मैं डरता हूँ कि कहीं उन सिद्धान्तों को तुमसे निकालने की जगह मैं ही न उनमें फँस जाऊँ—नहीं, यह नहीं” कुमारगिरि रुक गया। अपनी मानसिक दुर्बलता का उसने पहिली बार अनुभव किया था, और अनजाने में प्रकट भी कर दिया था। दुर्भाग्यवश उसने इस दुर्बलता को प्रकट किया एक नर्तकी के सामने। कुमारगिरि को अपने ऊपर कोध हुआ। उनका शान्त मुख उद्घिनता से लाल हो गया, “सुन्दरी! मैंने जो कुछ कहा उससे कोई प्रयोजन नहीं। अब तुम से मेरी केवल इतनी प्रार्थना है कि तुम यहाँ से चली जाओ। मुझे समय दो कि मैं परिस्थितियों पर विचार करूँ।”

“वहुत अच्छा योगी ! यदि तुम्हें मेरी उपस्थिति से कुछ दुःख होता है तो मुझे यहाँ से चला जाना ही उचित होगा । तुम समझते हो कि जो स्त्री तुम्हारे सामने खड़ी है वह अन्धकार है, माया है । तुम्हें मेरे विकृत सिद्धान्तों से भय होता है, पर तुम्हारी यह धारणा निर्मूल है । जिस समय में तुमसे दीक्षा लेने चली थी उसी समय मैंने अपने विश्वासों को, भावनाओं को तथा संस्कारों को तिलाङ्जलि दे दी थी । और रही स्त्री के अन्धकार तथा माया होने की बात, योगी, वहाँ भी तुम भूलते हो ! स्त्री शक्ति है ! वह सृष्टि है, यदि उसे सञ्चालित करने वाला व्यक्ति योग्य है, वह विनाश है यदि उसे सञ्चालित करने वाला व्यक्ति अयोग्य है । इसलिए जो मनुष्य स्त्री से भय खाता है, वह या तो अयोग्य है या कायर है । अयोग्य और कायर दोनों ही व्यक्ति अपूर्ण हैं ।”

चित्रलेखा वहाँ से चल दी । कुछ दूर जाकर वह रुकी, कुमारगिरि की दृष्टि शून्य में गड़ी हुई थी । चित्रलेखा ने कहा, “हाँ, एक बात कहना मैं भूल गई थी, वह यह कि मैं तुम्हारे यहाँ कल फिर आऊँगी । तुम्हें विचार करने का यथेष्ट समय दे रही हूँ । यदि मुझे दीक्षा देना उचित समझना तो कल बतला देना । अच्छा श्री चरणों को दासी का प्रणाम !”

कुमारगिरि ने चित्रलेखा को जाते हुए देखा—वह एकाएक चौंक उठा । चित्रलेखा के स्वर का संगीत उसके कानों में गूंज रहा था, उसके सौन्दर्य की आमा उसकी आँखों के आगे नाच रही थी । वह उस अतृप्त शराबी की भाँति चित्रलेखा को देख रहा था जिसको संज्ञा-हीन हो जाने का भय हो और जिसके सामने सुगंधित मदिरा बह-बह कर धूल में मिली जा रही हो । कुमारगिरि के लिए अपने को रोकना असम्भव हो गया, उसने चित्रलेखा को पुकारा, “सुन्दरी, ठहरो !”

कुमारगिरि की आँखें झुक गईं । उसकी आत्मा ने हृदय की उच्छृंखलता का विरोध तो अवश्य किया, पर हृदय ने यह कहकर,

“मुझे इस स्त्री की बातों का उत्तर देकर अपनी स्थिति को स्पष्ट कर देना आवश्यक है !” आत्मा की भर्त्सना को टाल दिया । चित्रलेखा लौट आई; उसके मुख पर मुसकान थी और हृदय में कम्पन था ।

“योगी ! तुमने शायद अपनी भूल समझ ली । वोलो क्या कहते हो ?”

कुमारगिरि ने कोई उत्तर न दिया । वह उस चाँदनी में चित्रलेखा के सौन्दर्य को निरख रहा था । उसने चित्रलेखा का शृंगार देखा, और शृंगार-भार से पुलकित सौन्दर्य देखा; उसने मदिरा देखी और मादकता देखी । उसने इच्छा का अनुभव किया, और इच्छा की मनोहरता का भी अनुभव किया । एकाएक उसके हृदय में यह प्रश्न उठा, “स्त्री क्या है, और सौन्दर्य क्या है ? भगवान ने इन चीजों की रचना क्यों की है ?” प्रश्न अनुचित था, वर्षों की चिर-सञ्चित विचार-धारा ने कहा, “क्या मैं अपने मार्ग से विचलित हो रहा हूँ ?” भरपूर प्रयत्न करके उसने एकदम ही इस विचारावलि को दबा दिया ।

“सुन्दरी किस भूल की ओर तुमने संकेत किया था ? अपनी जान में मैंने कोई भूल ही नहीं की ।”

प्रतिवाद करना उचित न था, “देव ! क्षमा करना । जिसको मैं गुह बनाने आई हूँ वह भूल नहीं कर सकता । मैं अपने शब्दों पर क्षमा चाहती हूँ ।”

“हाँ, अभी तुमने पूछा था कि मैं तुमसे क्या कहना चाहता हूँ, और शायद तुम यह भी पूछो कि मैंने तुमको क्यों बुलाया था । मैं स्वयम् ही नहीं जानता कि मैंने यह सब क्यों किया, निश्चय ही मैंने इस बार एक बड़ी भूल की थी । फिर भी जब मैंने तुमको बुला ही लिया है तो एक बात कह दूँ, वह यह कि मैं तुमको दीक्षा देने में असमर्थ हूँ । असमर्थ ही नहीं हूँ वरन् यह काम मेरे लिए असम्भव है । तुम्हें दीक्षा देने का अर्थ होगा शायद तुमसे स्वयम् ही दीक्षित होना । और उसके लिए मैं तैयार नहीं ।” कुमारगिरि की आँखें अस्ताचल पर जाते हुए चन्द्रमा पर पड़ी थीं ।

चित्रलेखा गम्भीर थी। उसके मुख पर निराशा का पीलायन था, उसके नेत्रों में कहगा की छाया थी। धीरे से उसने कहा, “देव ! तुमने जो भूल की उसका तुमसे अधिक दुःख मुझको है। क्या कहूँ ? तुम्हारी असमर्थता का मेरे जीवन पर कैसा प्रभाव पड़ेगा, यह मैं अभी ठीक तरह से नहीं कह सकती; पर इतना निश्चय है कि तुमने मेरे जीवन को बहुत अधिक प्रभावित कर दिया है। अभी तक आशा थी, मैं जा रही थी भविष्य के आवार पर, यह सोचते हुए कि शायद तुम मुझे दीक्षा दे दो, पर अब वह आशा भी लोग हो गयी। तुम्हारे मतानुसार मेरा जीवन अन्धकारमय है, मैं तुम्हारे प्रकाश को देखना चाहती हूँ, ‘चाह’ पूरी नहीं हो सकती, पर इसके लिए मैं तुम्हें दोष न दूँगी, मैं दोष दूँगी अपने भास्य को !” इतना कहकर चित्रलेखा योगी कुमारगिरि के ओर निकट चली गयी।

योगी निस्तब्ध खड़ा था। चित्रलेखा ने उसके हाथ पकड़ लिये। योगी ने एक विचित्र कम्पन का अनुभव किया, पर इस कम्पन में सुख था, उल्लास था। “हाँ ! मेरा और तुम्हारा साथ शायद असम्भव ही है। मैं स्त्री हूँ और तुम पुरुष, मैं नर्तकी हूँ और तुम योगी, मेरा क्षेत्र है वासना और तुम्हारा क्षेत्र है साधना। दोनों में प्रतिद्वन्द्विता है। तुम मेरे जीवन में वरण्डर की भाँति आकर निंकले जाते हो, ठीक ही है ! प्रयत्न कहाँगी कि भविष्य में मैं तुमसे न मिल सकूँ। पर इसके पहले कि हम दोनों पृथक् हों, योगी, मैं तुम्हारे पैरों की धूल अपने मस्तक पर चढ़ाना चाहती हूँ।” चित्रलेखा कुमारगिरि के पैरों पर गिर पड़ी।

कुमारगिरि का हृदय धड़क रहा था। चित्रलेखा को पैरों पर निरा हुआ देखकर वह चौंक-सा उठा। उसने चित्रलेखा को उठा लिया। ऐसा करने में योगो के हाथ चित्रलेखा के उरोजों से स्पर्श कर गये। चित्रलेखा आनन्द से पुलकित हो उठी। योगी के लिए इस स्पर्श का कोई महत्व न था, साधारण रूप से अनजाने उससे ऐसा हो गया था

विचार-धारा दूसरी ओर केन्द्रीभूत होने के कारण उसने इसपर ध्यान न दिया था। पर चित्रलेखा इसका कुछ दूसरा ही अर्थ समझी।

“तुम मेरे चरण क्यों छू रही हो सुन्दरी ?”

चित्रलेखा कुमारगिरि से मिली हुई खड़ी थी। उसने अपना मुख कुमारगिरि के मुख के पास ले जाकर कहा, “तुम मेरे आराध्य-देव हो।”

कुमारगिरि की आँखें चित्रलेखा की आँखों से मिल गयीं। चित्रलेखा की आँखों की मादकता का प्रभाव कुमारगिरि की आँखों पर भी पड़ रहा था। चित्रलेखा ने अपना मुख थोड़ा सा और बढ़ाया। कुमारगिरि ने अपना मुख हटाया नहीं, उसकी भी श्वास गरम हो गयी थी। उसका सारा शरीर काँपने लगा था।

इसी समय कुमारगिरि को सुनाई पड़ा “गुहदेव !”

कुमारगिरि चौंक उठा। वह इस प्रकार चित्रलेखा के पास से हट गया जिस प्रकार वह मनुष्य चौंककर हटता है जो सर्पिणी के पास तक उसे विना देखे हुए पहुँच जाता है और उसी समय जब सर्पिणी उसे डसना चाहती है कोई दूर पर खड़ा हुआ व्यक्ति उसे सचेत कर देता है। सामने विशालदेव खड़ा था। विशालदेव को देखकर कुमारगिरि लज्जा से मानो धूल में गड़ गया। वह आज पराजित हुआ था नर्तकी से अपने शिष्य के ही सामने।

और चित्रलेखा को विशालदेव पर क्रोध हुआ। विशालदेव को इस अवसर पर आने का कोई अधिकार न था। वह उस सर्पिणी की भाँति फुकुकार कर विशालदेव की ओर मुड़ी जो संयोग के समय मनुष्य के सामने आते ही उस मनुष्य पर टूट पड़ती हो। “युवा ! तुम कौन हो और यहाँ इस समय क्यों आये ?” चित्रलेखा का स्वर तीव्र हो गया था।

“मैं गुहदेव का शिष्य हूँ और इतनी अधिक रात्रि बीतने पर भी गुहदेव के न लौटने के कारण मैं उन्हें ढूँढ़ने चला आया था।”

चित्रलेखा ने धीरे से कहा, “हाय रे भाग्य !” इसके बाद उसने

कुमारगिरि से कहा, “अच्छा अब जाती हूँ गुहदेव ! पर इतना ध्यान में रखना कि मैं तुमसे दीक्षा लेना चाहती हूँ और तुमको मुझे दीक्षा देनी ही होगी !” चित्रलेखा के मृदुल गम्भीर स्वर में आज्ञा देनेवाली स्वामिनी का गुरुत्व था । “मैं जनरव से निकलकर एकान्त में आना चाहती हूँ, माया को छोड़कर मैं ब्रह्म में लिप्त होना चाहती हूँ ! तुम्हें समय दे रही हूँ गुहदेव, कि इस प्रश्न पर विचार करो । तुम मनुष्य से ऊपर हो, मुझसे डरने का तुम्हें कोई कारण नहीं, तुमने वासनाओं पर विजय पा ली है, नाथ, इसी से मैं तुमसे प्रार्थना करती हूँ । अच्छा श्रीचरणों को दासी का प्रणाम !” इतना कहकर चित्रलेखा वहाँ से चली गयी ।

कुमारगिरि ने विशालदेव का हाथ जोर से पकड़कर कहा, “तुम मूर्ख हो !” उस समय चन्द्रमा अस्ताचल के नीचे उतर रहा था ।

सातवाँ परिच्छेद

“श्वेतांक !”

“स्वामी !”

“वतला सकते हो तुमने आज क्या देखा ?”

“हाँ ! आज योगी कुमारगिरि को स्वामिनी ने पराजित किया है। मुझे कितना हर्ष है !”

“तुम्हें हर्ष है !” बीजगुप्त हँस पड़ा, पर उसकी हँसी रुखी थी। “तुम्हें हर्ष है कि चित्रलेखा ने कुमारगिरि को पराजित किया। पर श्वेतांक, मुझे दुःख है। तुम शायद मेरी वात पर आश्चर्य करोगे, पर वात ठीक है। तुम हँस सकते हो, मैं भी शायद हँस सकता हूँ; पर मेरी आत्मा रोती है !”

श्वेतांक ने आश्चर्य से पूछा, “मैं स्वामी का तात्पर्य नहीं समझ सका।”

“नहीं समझ सके ? और तुम समझ भी किस प्रकार सकते हो ! तुमने अभी संसार नहीं देखा है, तुम अनुभव से रिक्त हो। जिसे तुम चित्रलेखा की विजय समझे हो वह उसकी बहुत बड़ी पराजय है। चित्रलेखा और कुमारगिरि ! कोई भी विजयी नहीं है, दोनों ही पराजित हुए हैं। परिस्थिति का चक्र तेजी के साथ धूम रहा है, उसी चक्र के फेरे मैं ये दोनों प्राणी फँस गये हैं।”

श्वेतांक बीजगुप्त की वात अब भी नहीं समझ सका। उस समय तक रथ बीजगुप्त के द्वारा तक पहुँच चुका था। दोनों रथ से उतर पड़े। बीजगुप्त ने श्वेतांक का हाथ पकड़कर कहा, “अब तुम से कुछ बातें करने की इच्छा है। चलो, मेरे साथ तुम्हें कुछ देर तक बैठना पड़ेगा।”

श्वेतांक वास्तव में बीजगुप्त की बात नहीं समझ सका था। स्वामी और सेवक—दोनों अध्ययन-भवन में गये। श्वेतांक को बैठने का आदेश देते हुए बीजगुप्त ने बैठकर कहा, “श्वेतांक ! जानते हो कि कुमारगिरि की पराजय क्यों हुई ?”

“नहीं ।”

“इसका रहस्य मुझसे सुनो। तुम चित्रलेखा को उतना नहीं जानते जितना मैं जानता हूँ। चित्रलेखा का व्यक्तित्व बहुत ऊँचा है और प्रभावशाली भी है। कुमारगिरि विद्वान् है और योगी है, वासनाओं से उसका वैर है। और चित्रलेखा विदुपी होते हुए भी साधना की विरोधी है। कुमारगिरि और चित्रलेखा दोनों ही अहम्-भाव से भरे हुए ममत्व के दास हैं और दोनों ही ममत्व की तुष्टि पर विश्वास करते हैं। पर दोनों के साधन भिन्न हैं और विपरीत हैं। एक ने साधना की शरण ली है, दूसरे ने आत्म-विश्वास की। पर आज जो कुछ हुआ उससे दोनों ही व्यक्ति अपने-अपने साधन से विरत हो गये। निकट भविष्य में दोनों ही अपनी-अपनी शवित खो बैठेंगे।”

बीजगुप्त की बातों ने श्वेतांक के लिए पहेली का रूप धारण कर लिया था। उसने कहा “स्वामिन् ! मैं आपकी विचार-धारा की थाह नहीं पा सका।”

बीजगुप्त का स्वर धीमा पड़ गया। “इन बातों को अधिक स्पष्ट करने की न तो मुझमें क्षमता है और न मैं इसको उचित ही समझता हूँ। हाँ, यदि तुम यह जानना ही चाहते हो तो मेरे बताए हुए मार्ग पर चलो।”

श्वेतांक ने कहा, “स्वामी की आज्ञा भर की देर है ?”

बीजगुप्त ने कहा, “आज तुम चित्रलेखा को बधाई देने जाओ, और उसके मुखांकित भावों का अध्ययन करो।”

श्वेतांक उसी समय चित्रलेखा के भवन पर पहुँचा। चित्रलेखा के भवन में प्रकाश हो रहा था, बधाई देने के लिए आये हुए सामन्त-युवकों

की भीड़ द्वार को घेरे खड़ी थी। चित्रलेखा की दासियाँ उनका स्वागत तथा अतिथि-सत्कार कर रही थीं। पर चित्रलेखा न थी। श्वेतांक ने एक दासी से पूछा, “स्वामिनी कहाँ हैं?” उसने श्वेतांक को भवन के अन्दर ले जाकर एक सुसज्जित कमरे में विठलाया, “स्वामिनी अभी नहीं लौटे—आती ही होंगी।” श्वेतांक प्रतीक्षा करने लगा।

प्रतीक्षा में खड़े हुए निराश सामन्तों की भीड़ छटने लगी। एक के बाद एक करके सब सामन्त चले गये, घण्टों बीत गये, पर फिर भी चित्रलेखा न आयी। श्वेतांक को आश्चर्य हुआ। इस समय चित्रलेखा कहाँ गयी होगी। उसने फिर दासी से पूछा, “स्वामिनी के कब तक लौटने की सम्भावना है?” उसने उत्तर दिया, “मैं कह नहीं सकती।”

श्वेतांक भी प्रतीक्षा में व्यग्र हो गया। प्रायः आधीरात बीतने पर आ गयी थी, पर चित्रलेखा का पता न था। श्वेतांक के मन में कई बार घर लौटने की इच्छा हुई, पर उसके कौतूहल ने उसे ऐसा करने से रोका। उसी समय अर्धरात्रि-सूचक घण्टा बजा। श्वेतांक उठ खड़ा हुआ! दासी से उसने कहा, “स्वामिनी जब आयें तो कह देना कि मैं बधाई देने आया था।” इतना कहकर वह भवन से बाहर निकला। उसी समय चित्रलेखा का रथ उसे आता हुआ दिखाई पड़ा। श्वेतांक रुक गया।

श्वेतांक ने रथ से चित्रलेखा को उतारा। चित्रलेखा श्वेतांक को देखकर मुसकराई “कहो श्वेतांक! इतनी रात्रि तक तुमने जागने का क्यों कष्ट उठाया?”

“स्वामिनी को बधाई देने के लिए!” श्वेतांक हँस पड़ा।

चित्रलेखा का हाथ पकड़कर श्वेतांक उसे उसके श्रुंगार-गृह में ले गया। चित्रलेखा ने कहा, “श्वेतांक! तुम मेरे अतिथि-भवन में बैठ कर प्रतीक्षा करो, मैं अभी आती हूँ।”

वस्त्र बदलकर चित्रलेखा अतिथि-भवन में आयी। उस समय वह

केवल एक श्वेत धोती पहिने हुए थी। “हाँ श्वेतांक ! तुम मुझे बधाई देने आये हो ! क्यों ? किस बात पर ?”

“स्वामिनी की विजय पर !”

“मेरी विजय पर !” चित्रलेखा का मुख जो कुछ क्षण पहिले उल्लास से चमक रहा था, बिल्कुल पीला पड़ गया था। यौवन की उमंग में छिपी हुई यह विषाद की भलक श्वेतांक ने प्रथम बार देखी थी—वह इसका अर्थ न समझ सका। सुन्दर मुख का प्रत्येक भाव-परिवर्तन सुन्दर होता है; विषाद का पीलापन लिये हुए वह वेश भी श्वेतांक को बड़ा मोहक लगा, और विशेषतः इसलिए कि उसके पीले मुख पर सहस्रों दीप-शिखाओं का प्रकाश पड़ रहा था, “मेरी विजय पर !” श्वेतांक, मैं बधाई की पात्री नहीं हूँ; यह मेरो विजय नहीं थी, यह एक मेरी बहुत बड़ी पराजय थी !”

चित्रलेखा ने भी वही बात कही जो बीजगुप्त ने कही थी। और दोनों ने यह बात गम्भीरतापूर्वक कही थी। श्वेतांक को आश्चर्य हुआ।

चित्रलेखा ने श्वेतांक के मुखांकित भाव पढ़ लिये। “तुम्हें मेरी बातों पर आश्चर्य होता होगा, पर आश्चर्य करने का कोई कारण नहीं है। जानते हो मैं अभी कहाँ गयी थी !”

“यह प्रश्न मैं भी पूछता चाहता था, पर साहस नहीं पड़ा !”

“तो सुनो ! मैं अभी आ रही हूँ कुमारगिरि की कुटी से। कुमार-गिरि को अपमानित और लांछित करने का न मुझे कोई कारण था और न मुझको कोई अधिकार ही था। मेरा क्षेत्र दूसरा है; विद्वानों के क्षेत्र में पदार्पण करना मेरे लिए अनुचित था। मैंने जो कुछ किया वह बुरा किया। इस समय मैं उससे क्षमा-प्रार्थना करने गयी थी !”

श्वेतांक अवसन्न रह गया। चित्रलेखा का यह कैसा भाव-परिवर्तन था, वह यह न समझ सका। उसने पूछा, “पर जो ठीक है उसको बतला देना प्रत्येक मनुष्य को उचित है। और जो मनुष्य धोखा देकर मनुष्य को भ्रम में डाल रहा हो, उस मनुष्य की वास्तविकता पर

प्रकाश डालना कर्तव्य है। देवि ! तुमने जो कुछ किया वह ठीक किया।”

“इसी बात का तो मुझे दुःख है ! मैंने जो कुछ किया उसे सारा संपार ठीक समझता है, पर मैं ठीक नहीं समझती। कुमारगिरि योगी है, और उसमें शक्ति है, उसका सत्य और ईश्वर ये दोनों ही उसकी कल्पना-जनित थे, पर साथ ही मनुष्य में इतनी उत्कृष्ट कल्पना का होना भी असम्भव है। इस कल्पना का स्रोत कहाँ है ? यही प्रश्न है। कुमारगिरि में सूजन की शक्ति है; मैंने जो कुछ किया वह विनाश का काम था। व्यक्तित्व की उत्कृष्टता किसी भी बात को काटने में नहीं होती, उसे सिद्ध करने में होती है; विगाइने में नहीं होती, बनाने में होती है।”

“पर यदि मनुष्य ऐसी इमारत बनाता है जो उसमें रहने वाले व्यक्तियों को हानिकारक है तो उसे नष्ट कर देना क्या उचित नहीं है ?”

चित्रलेखा हँस पड़ी। “तर्क से कोई लाभ नहीं, मैं इतना अनुभव कर रही हूँ कि मैंने बुरा किया। पर जो कुछ कर दिया, वह कर दिया; उसका परिणाम भुगतना ही पड़ेगा !”

“परिणाम !” श्वेतांक के लिए यह एकदम दूसरी समस्या थी, “कैसा परिणाम देवि ?”

“यह तुम्हें निकट भविष्य में मालूम हो जायगा।” चित्रलेखा ने दासी को पुकारा।

“अभी मैंने भोजन नहीं किया है ! और श्वेतांक सम्भवतः तुमने भी भोजन नहीं किया है।”

चित्रलेखा ने दासी को दो थालों में भोजन लाने की आज्ञा दी।

दासी चली गयी। चित्रलेखा ने मदिरा की सुराही निकाली। स्वयम् पीकर उसने श्वेतांक को भी मदिरा दी। श्वेतांक उस समय तक मदिरा पीने का अभ्यस्त हो गया था। उसने भी पात्र खाली कर

दिया। चित्रलेखा ने श्वेतांक से कहना आरम्भ किया, “श्वेतांक! मेरा तुम पर स्नेह है, और उस व्यक्ति से कोई बात न छिपानी चाहिये जिससे स्नेह हो।”

श्वेतांक चित्रलेखा के इस कथन पर न्यौछावर हो गया। श्वेतांक वास्तव में चित्रलेखा को स्वामिनी की भाँति भानता था, यद्यपि चित्रलेखा का उसके साथ वर्तवि सदा ममतापूर्ण-सा था। उसने कहा, “देवि! मैं विश्वास दिलाता हूँ कि मैं किसी अंश में सहानुभूति में कम नहीं हूँ।”

चित्रलेखा ने श्वेतांक का हाथ पकड़कर कहा, “श्वेतांक! तुम मेरा भेद किसी पर प्रकट न करोगे?”

“मैं शपथ खाकर प्रतिज्ञा करता हूँ।”

“और मेरी सहायता करोगे?”

“मैं शपथ खाकर प्रतिज्ञा करता हूँ।”

चित्रलेखा ने श्वेतांक का हाथ छोड़ दिया। “सुनो! मेरी आज की विजय वास्तव ने मेरी विजय न थी वरन् मेरी पराजय थी। कुमारगिरि ने मेरे जीवन को बुरी तरह प्रभावित कर दिया है।”

श्वेतांक को उस भयानक सत्य का कुछ आभास हुआ जिसकी ओर बीजगुप्त ने संकेत किया था। अपने अविश्वास को दूर करने के लिए उसने पूछा, “किस प्रकार?”

“किस प्रकार? इतना भी नहीं समझ सके हो? सुनो, मैं कुमारगिरि से प्रेम करने लग गयी हूँ। मुझे ऐसा अनुभव होता है मानो मेरा और कुमारगिरि का युग-युगान्तर का सम्बन्ध है। आज उस सभा में उस योगी ने समस्त भारतवर्ष के अखण्ड विद्वानों पर विजय पायी, प्रत्येक व्यक्ति उससे प्रभावित था—पर मैं नहीं। और यह क्यों? यह केवल इसलिए कि कुमारगिरि को मैं जानती हूँ और मुझको कुमारगिरि। हम दोनों जन्म-जन्मान्तरों में बराबर साथ रहे हैं।”

श्वेतांक पुनर्जन्म पर विश्वास करता था—उसने चित्रलेखा की बातों का विरोध न किया, “हाँ, समझा!”

“जिस दिन से मैंने कुमारगिरि को देखा है उस दिन से मैं उसकी ओर आकर्षित हो रही हूँ। उसकी आत्मा की थाह वही ले सकता है जिसने उसकी आत्मा को अच्छी तरह से समझ लिया हो। मैं उसको अच्छी तरह से जानती हूँ और साथ ही उसकी आत्मा को। श्वेतांक ! कुमारगिरि मेरे जीवन का प्रधान अभिनेता है !”

“समझ गया हूँ देवि ! पर मैं किस प्रकार सहायता कर सकता हूँ ?”

दासी भोजन के दो थाल परसकर ले आई। चित्रलेखा ने श्वेतांक को भोजन करने का आदेश देकर भोजन करना आरम्भ कर दिया।

भोजन करने के पश्चात् चित्रलेखा ने कहा, “हाँ, तुमने पूछा था कि तुम किस प्रकार मेरी सहायता कर सकते हो ! तुम मेरी सहायता केवल इस प्रकार कर सकते हो कि तुम वीजगुप्त पर मेरा भेद अभी प्रकट न करो। वीजगुप्त को मुझपर अविश्वास होगा—पर तुम्हारा यह काम होगा कि तुम वीजगुप्त के अविश्वास को दूर कर दो !”

श्वेतांग कुछ सोचने लगा। चित्रलेखा ने उससे जो कुछ कहा था उसका करना श्वेतांक के लिए कठिन था। वीजगुप्त उसका स्वामी था—वीजगुप्त को धोखा देना स्वामी के साथ विश्वासघात करना था। पर साथ ही चित्रलेखा भी उसकी स्वामिनी थी—और साथ साथ.....।

चित्रलेखा ने श्वेतांक के मुखांकित भाव पढ़ लिये। उसने मदिरा का पात्र फिर भरकर श्वेतांक के होठों से लगा दिया। उस समय चित्रलेखा मुसकरा रही थी। श्वेतांक ने पात्र खाली कर दिया। उसी प्रकार मुसकराते हुए चित्रलेखा ने पूछा, “बोलो ! क्या तुम मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करोगे ?”

श्वेतांक मौन ही रहा—हाँ और नहीं—उसके मुख से कुछ भी न निकला।

चित्रलेखा की मुसकराहट लोप हो गयी—क्रोध की हल्की-सी लाल रेखा उसके पराग से रञ्जित कपोलों पर ढीड़ गयी; उसके कोमल हाथ आवेश में थिरक उठे। उसने श्वेतांक का हाथ पकड़ लिया, “श्वेतांक! मैं तुम्हें आज्ञा देती हूँ कि जो कुछ मैंने कहा है तुम्हें करना पड़ेगा।”

श्वेतांक चित्रलेखा के इस क्रोध के सामने भुक गया। उसने धीरे से कहा, “जो आज्ञा! स्वीकार है।”

“तुम्हें शपथ लेनी पड़ेगी!” चित्रलेखा कुछ रुकी। “नहीं, तुम्हें शपथ लेने की कोई आवश्यकता नहीं। तुमने अपना वचन मुझको दिया है और अपने वचनों की पवित्रता पर तुम्हें ध्यान रहेगा इतना मुझे विश्वास है!” इतना कहकर चित्रलेखा ने श्वेतांक के होठों से मदिरा का तीसरा प्याला लगा दिया।

श्वेतांक के नेत्र बन्द थे। उसने अपूर्व सुख का अनुभव किया। मदिरा पीकर उसने कहा, “देवि! मैंने सदा तुम्हारी पूजा की है। मेरे जीवन का तुम्हारे जीवन से बड़ा गहरा सम्बन्ध है। तुम मेरी स्वामिनी हो और मैं तुम्हारा दास हूँ। तुम्हारा प्रत्येक वाक्य मेरे लिए वेद-वाक्य है इतना विश्वास रखना। और अपने वचनों की पवित्रता के विषय में मैं केवल इतना ही कह सकता हूँ कि मैं नीच नहीं हूँ।”

श्वेतांक उठ खड़ा हुआ। चित्रलेखा ने कहा, “क्या आज मुझे श्वेतांक को पहुँचाने का प्रवन्ध करना पड़ेगा?”

“नहीं!” श्वेतांक के नशे में कम्पन न था, आत्म-विस्मृति न थीं, “अभी होश में हूँ और होश में ही रहूँगा।” इतना कहकर श्वेतांक वहाँ से चल दिया।

जिस समय श्वेतांक भवन में लौटा, उसने बीजगुप्त के अध्ययन-भवन में प्रकाश देखा। परिचारिका ने उससे कहा, “स्वामी तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।”

श्वेतांक ने अध्ययन-गृह में प्रवेश किया। बीजगुप्त उस समय-

बैठा हुआ कुछ सोच रहा था। आज तक श्वेतांक ने वीजगुप्त को चिन्तित न देखा था। वीजगुप्त के सामने मदिरा का रिक्त पात्र था और चिन्ता का अथाह सागर था। कश्पना के उद्यान में भय की तप्त वायु का भोंका था; सुख के साम्राज्य में दुःख की क्रान्ति थी। श्वेतांक को देखकर वीजगुप्त मानो निद्रा में नींक उठा “तुम आ गये! पर बहुत देर लग गयो।”

श्वेतांक बैठ गया सुराही से उँडेलकर उसने शीतल जल से पात्र भरकर एक धूट में खाली कर दिया।

कुछ देर तक उत्तर की प्रतीक्षा करने के बाद वीजगुप्त ने फिर कहा, “श्वेतांक, तुम मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दे रहे हो, क्या कारण है?”

“हाँ स्वामी, स्वामिनी की प्रतीक्षा में मुझे इतनी देर लग गयी।”

“चित्रलेखा की प्रतीक्षा में?” वीजगुप्त सम्हलकर बैठ गया। “क्या कहा, जिस समय तुम चित्रलेखा के भवन पर पहुँचे उस समय वह वहाँ नहीं थी?”

श्वेतांक भिखका। उसे अपनी प्रतिज्ञा और शपथ का स्मरण हो आया, “स्वामी का अनुमान ठीक है, चित्रलेखा अपने भवन में न थी।”

वीजगुप्त ने श्वेतांक के वाक्यों में हिचकिचाहट देखी, उसने फिर पूछा “तुम्हें शायद उसने यह बताया होगा कि वह कहाँ गयी थी?” श्वेतांक के हृदय में तर्क-वितर्क उठ खड़े हुए, पर निर्णय पर पहुँचने के लिए उसके पास यथेष्ट समय न था। उसने बिना किसी हिचकिचाहट के उत्तर दिया, “स्वामिनी ने तो कुछ नहीं कहा पर ऐसा प्रतीत होता है कि वह मन्त्री चाणक्य के यहाँ आमन्त्रित थीं।”

वीजगुप्त के हृदय से एक भार-सा हट गया। उसके हृदय में न जाने कैसे यह धारणा उत्पन्न हो गयी थी कि चित्रलेखा सम्भवतः कुमारगिरि के यहाँ गयी थी। श्वेतांक के इस उत्तर से उसका भय दूर हो गया। उसने श्वेतांक से फिर पूछा, “हाँ, अब बताओ तुमने चित्रलेखा को बधाई दी थी?”

“हाँ !” श्वेतांक ने धीरे से कहा, “पर चित्रलेखा ने मुझसे यह कहा कि वह वधाई की पात्र नहीं है। अपनी विजय पर उसे गर्व न था, उसे उसपर मुख भी न था; मुझे इसपर आश्चर्य हुआ। चित्रलेखा को अपनी विजय पर दुःख था।”

बीजगुप्त मुसकराया—पर उसकी उस मुसकराहट में करुणा का अथाह सागर छिपा हुआ था, “मैंने तुमसे क्या कहा था ? चित्रलेखा का अपनी विजय स्वीकार न करना ही इस बात का चोतक है कि चित्रलेखा की पराजय हुई है ?”

“स्वामी के अर्थ को कुछ-कुछ समझ सका हूँ !”

“कुछ-कुछ समझने के कोई अर्थ नहीं होते। यदि तुम समझ सकते हो तो पूर्णतया, नहीं तो विलकुल ही नहीं।” बीजगुप्त उठ खड़ा हुआ, “श्वेतांक, यह याद रखना कि मनुष्य स्वतन्त्र विचार वाला ब्राणी होते हुए भी परिस्थितियों का दास है। और यह परिस्थिति चक्र क्या है पूर्व जन्म के कर्मों के फल का विधान है। मनुष्य की विजय वहीं सम्भव है जहाँ वह परिस्थितियों के चक्र में पड़कर उसी के साथ चक्कर न खाय, वरन् अपने कर्तव्याकर्तव्य का विचार रखते हुए उसपर विजय पावे। चित्रलेखा परिस्थितियों के चक्र में पड़ गयी है, कुमारगिरि का उसके जीवन में आना उसके लिए घातक है और उसका कुमारगिरि के जीवन में आना कुमारगिरि के लिए घातक है। दुर्भाग्यवश दोनों ही एक दूसरे के जीवन में बिना जाने हुए अपनी-अपनी साधनाओं को भ्रष्ट करने के लिए आ गये हैं—भगवान् ही उनकी सहायता कर सकता है।”

आठवाँ परिच्छेद

महासागर के शान्त वक्षस्थल पर भयानक झंझावात उठने के पहिले एक घोर निस्तब्धता छा जाती है, उस समय वायु-मण्डल उत्तेजित हो उठता है और सारा वातावरण भावी क्रान्ति की आशंका से शून्य-सा हो जाता है।

और उसके बाद ? वायु के प्रचण्ड झोंके—लहरों का ताण्डव नर्तन तथा विप्लव-गायन।

आकाश के कक्ष पर ज्वालामुखी के फटने के पहिले एक घोर दबी हुई अशान्ति फैल जाती है, उसका नीला रंग धूमिल हो जाता है और विनाश के भय से सारा आकाश-मण्डल वायु से रिक्त हो जाता है।

और उसके बाद ? अग्नि के शोले—और विनाश।

चिन्नलेखा का रथ बीजगुप्त के द्वार पर रुका—उस समय सन्ध्या हो गयी थी। दिन के भयानक गरमी के बाद पाटलिपुत्र की सड़कों पर सामन्तों के रथ उमड़ पड़े थे; फूलों के हार लिये हुए मालिन युवतियाँ सामन्तों को हार पहिना रही थीं—सुवासित तथा शीतल शर्वंत के पात्र धनी युवकों तथा युवतियों के होठों का चुम्बन कर रहे थे। चारों ओर उल्लास और विलास था।

राज-मार्ग उस समय मानो उत्सव का केन्द्र हो रहा था। जौहरियों की दूकानों पर युवतियाँ रंगरेलियाँ कर रही थीं, और तँबोलियों की दूकानों पर युवक। बीजगुप्त भी उसी जन-रव का एक भाग था।

इवेतांक उस समय बाहर जाने की तैयारी कर रहा था। उसका रथ बाहर खड़ा था, परिचारिका उसको वस्त्र पहिना रही थी। प्रहरी ने आकर सूचना दी, “प्रभु ! स्वामिनी का रथ द्वार पर प्रभु की प्रतीक्षा कर रहा है।”

श्वेतांक चौंक उठा । उस समय वीजगुप्त की अनुपस्थिति उसे बुरी लगी; उसने धाप किया था और सम्भवतः उसे और अधिक पाप करना होगा जिसके लिए वह तैयार न था । फिर भी श्वेतांक ने उत्तर दिया, “कह दो कि शीघ्र ही आ रहा हूँ ।”

श्वेतांक बाहर निकला । उस समय वह बहुत सुन्दर लग रहा था । श्वेतांक चित्रलेखा के पारा गया, “क्या आज्ञा है देवि ?”

चित्रलेखा ने स्वाभाविक हँसी के साथ उत्तर दिया, “वीजयुप्त से मिलना था, पर शायद वे घर पर नहीं हैं ।”

श्वेतांक ने भी हँसते हुए उत्तर दिया, “स्वामिनी का अनुमान ठीक है ।”

“फिर यह सोचा कि तुम्हीं से मिल लूँ ।”

“देवि ने इस दास पर बड़ा अनुग्रह किया, देवि की सेवा में मैं सदा प्रस्तुत हूँ ।”

“इसकी कोई आवश्यकता नहीं । आज चित्त उचाट था और यह इच्छा हुई कि जन-रब में ही अपने चित्त को कुछ शान्त करूँ । धूमने का लक्ष्य लेकर निकली थी, यदि वीजगुप्त नहीं मिले तो कोई चिन्ता नहीं; तुम तो हो !”

“बहुत अच्छा !” इतना कहकर श्वेतांक अपने रथ की ओर बढ़ा । पर चित्रलेखा ने श्वेतांक का हाथ पकड़ लिया, “नहीं तुम्हें मेरे साथ इसी रथ पर चलना होगा ।”

मन्त्र-मुग्ध की भाँति श्वेतांक चित्रलेखा के रथ पर बैठ गया; रथ राज-मार्ग की ओर चल पड़ा । चित्रलेखा बैठी हुई थी, घोड़ों की बाग श्वेतांक के हाथ में थी । राज-मार्ग पर पहुँचते ही घोड़ों की बाग चित्रलेखा ने अपने हाथों में ले ली । अश्व थिरक उठे, गर्व से मस्तक उठा कर वे राज-मार्ग में धुसे—उन्हें शायद यह विदित हो गया था कि उनकी बागडोर उस स्त्री के हाथ में है जो पाटलिपुत्र के बड़े-से-बड़े सामन्तों को केवल संकेत पर नचा सकती है । चित्रलेखा के रथ को

देखकर बड़े-बड़े सामन्तों के रथ रुक जाते थे, लोग उसे अभिवादन करते थे और साय ही उसकी प्रशंसा । श्वेतांक को उसके साथ बैठे हुए देख कुछ लोगों ने व्यंग-वाक्य भी कहे, पर चित्रलेखा उस समय केवल हँस दी, उसने उन वाक्यों पर कोई ध्यान न दिया ।

उस समय चित्रलेखा फूलों की हार से लदी हुई थी । प्रत्येक सामन्त उसकी ओर एक हार फेंक देता था, चित्रलेखा उसे पहिनकर उसको कृतार्थ कर देती थी । रथारुड़ा चित्रलेखा उस समय साक्षात् शिवा की प्रतिमा थी—लोग उसका सम्मान करते थे, उसके सामने भुक जाते थे और उसकी पूजा करते थे । राज-पथ का विशाल जन-रव मानो चित्रलेखा का स्वागत कर रहा था ।

दूसरी ओर से एक रथ आकर चित्रलेखा के रथ के पास रुका । चित्रलेखा उस समय एक नवयुवक से बातें कर रही थी, रथ खड़ा हुआ था । दूसरे रथ के रुकने के साथ ही चित्रलेखा का ध्यान भंग हुआ—पार्श्व में बीजगुप्त हँस रहा था ।

“आज राज-मार्ग पर चित्रलेखा को देखकर आश्चर्य होता है !”

“और आज बीजगुप्त को उसके घर में न पाकर आश्चर्य हुआ ।”

उत्तर और प्रत्युत्तर—दोनों में गूँड़ रहस्य छिपा था जिसे दोनों ने समझ लिया । श्वेतांक रथ से उत्तर पड़ा, बीजगुप्त ने कहा, “चित्रलेखा बीजगुप्त के यहाँ आमन्त्रित है—सम्भवतः निमन्त्रण अस्वीकार न होगा ।”

चित्रलेखा ने उत्तर दिया, “चित्रलेखा को बीजगुप्त का निमन्त्रण सहर्ष स्वीकार है ।”

उस समय सन्ध्या बीत रही थी—राजमार्ग पर प्रकाश होने लगा था । बीजगुप्त अपने रथ से उतरकर चित्रलेखा के रथ पर बैठ गया—घोड़ों की रास उसने अपने हाथ में ले ली । श्वेतांक ने बीजगुप्त का रथ सम्हाला ।

दोनों रथ बीजगुप्त के भवन की ओर मोड़ दिये गये । बीजगुप्त

ने कहा, “मुझे दुःख है कि जिस समय तुम मेरे भवन में गयीं उसके समय मैं अनुपस्थित था।”

“दुःख होने की कोई बात नहीं”, चित्रलेखा मुसकराई, “दोष मेरा ही था क्योंकि मैं ऐसे समय पर पहुँची थी जब मैं कभी भी तुम्हारे यहाँ नहीं जाती थी, इसलिये तुम्हारा भवन में न होना अस्वाभाविक नहीं था।”

चित्रलेखा मौन बैठी थी और बीजगुप्त भी मौन था। कुछ देर तक दोनों में कोई बात नहीं हुई, इसके बाद बीजगुप्त ने आरम्भ किया, “चित्रलेखा ! कई दिनों से चित्त उद्विग्न रहा है। क्यों ? यह मैं स्वयं ही नहीं जानता। एक बात पूछूँगा—कई दिनों से तुम मेरे यहाँ नहीं आयों, इसका क्या कारण है ?”

चित्रलेखा ने अपना मुख उठाया, “कारण पूछते हो ! नहीं आप सकी क्योंकि आने की इच्छा न थी।”

बीजगुप्त को इस उत्तर की आशा न थी। उसका अनुमान था कि चित्रलेखा कोई कारण बतावेगी, पर इतनी स्पष्ट तथा वास्तविक बात सुनकर उसे आश्चर्य हुआ और कुछ क्रोध हुआ। क्रोध अपने ऊपर तो हुआ ही पर चित्रलेखा पर भी हुआ, “आने की इच्छा न थी ! इसका कारण जानने का मैं अधिकारी हूँ !”

चित्रलेखा ने बीजगुप्त के मुख की ओर देखा; उसपर दृढ़ता थी और गम्भीरता थी; क्रोध की छाप थी और स्वामीत्व की गुरुता थी। चित्रलेखा का मुख लाल हो गया, फिर भी अपने भावों को दबाते हुए कहा, “अधिकारी हो ! इतना नहीं जानती थी। मनुष्य पर मनुष्य का क्या अधिकार है यह मैं कभी नहीं समझ सकी। फिर भी तुम कारण जानना चाहते हो तो सुनो; इन दिनों किसी अंश तक मेरा चित्त उद्विग्न रहा है और उस उद्विग्नता में मैं अपने को और अपनाओं को भूल सी गयी थी।”

इस समय रथ बीजगुप्त के भवन के द्वार पर रुक गया। श्वेतांक

ने अपने रथ से उत्तरकर वीजगुप्त और चित्रलेखा को उतारा। तीनों वीजगुप्त के केलि-भवन में गये। इसके बाद श्वेतांक वहाँ से चलने लगा। श्वेतांक को जाते हुए देखकर वीजगुप्त ने कहा, “श्वेतांक! ठहरो, तुम्हारे जाने की कोई आवश्यकता नहीं।”

चित्रलेखा ने वीजगुप्त से कहा, “नहीं, श्वेतांक की यहाँ कोई आवश्यकता नहीं।”

“साथ ही श्वेतांक की उपस्थिति से कोई हानि भी नहीं है।” वीजगुप्त हँस पड़ा, “वरन् इसमें श्वेतांक का लाभ ही है! इस अनुभव-हीन व्यक्ति को सम्भवतः कुछ अनुभव ही प्राप्त हो।” श्वेतांक रुक गया, वीजगुप्त ने उसे मदिरा देने का संकेत किया।

इस काम में श्वेतांक अभ्यस्त हो गया था। मदिरा का पात्र उसने वीजगुप्त को दिया, चित्रलेखा को दिया और स्वयं भी लिया। कुछ थोड़ी दूर हटकर श्वेतांक बैठ गया।

वीजगुप्त ने आरम्भ किया, “हाँ! अभी तुमने कहा था कि तुम किसी उद्विग्नता में स्वयम् को और अपनों को भूल गयी थीं; इस विस्मृति को उत्पन्न करनेवाली उद्विग्नता भी विचित्र होगी!”

चित्रलेखा हँसी, “तो क्या मैं यह समझूँ कि वीजगुप्त मुझे अपनी मनः प्रवृत्ति का विश्लेषण करने को वाध्य कर रहे हैं?”

“नहीं, वाध्य नहीं कर रहा हूँ वरन् प्रार्थना कर रहा हूँ कि मुझको यह ज्ञात हो जाय।”

“यदि वीजगुप्त यह प्रार्थना कर रहे हैं तो उनको यह विदित हो कि उद्विग्नता असाधारण है और उस उद्विग्नता का कारण भी असाधारण है! पर साथ ही चित्रलेखा उस उद्विग्नता पर अधिक कहने में असमर्थ है।”

वीजगुप्त ने श्वेतांक की ओर देखा। श्वेतांक मौन-भाव से उस बातचीत को सुन रहा था। “चित्रलेखा असमर्थ है!” वीजगुप्त ने धीरे से कहा, “आज हम दोनों के परिचय के बाद पहिला अवसर उपस्थित

हुआ है जब चित्रलेखा बीजगुप्त से अपनी बातें छिपा रही है। चित्रलेखा का हृदय बदल गया है, इसका बीजगुप्त को कुछ क्षीण आभास हो रहा है।”

मदिरा की गरमी वहाँ पर बैठे हुए व्यक्तियों पर अपना प्रभाव जमाने लगी थी। दूसरा प्याला अपने होठों से लगाते हुए चित्रलेखा ने कहा, “इस परिवर्तनशील संसार में किसी भी चौज का बदल जाना अस्वाभाविक नहीं है।”

“बीजमुप्त स्तव्य-सा रह गया। इस उत्तर के लिए वह तैयार न था।” “क्या कहा। इस परिवर्तनशील संसार में किसी भी चौज का बदल जाना अस्वाभाविक नहीं है। तो फिर यह समझ लूँ कि चित्रलेखा का प्रेम बदल सकता है।”

चित्रलेखा ने जो बात कह दी थी उसके लिए वह स्वयम् ही पछता रही थी। बिना सोचे समझे, परिणाम पर विना ध्यान दिये हुए आवेश में आकर उसने यह बात कह दी थी, उसने यह सोचा तक न था कि उस बात पर इतना महत्वपूर्ण प्रश्न हो सकता है। उसने साहस किया, “नहीं, बीजगुप्त का अनुमान मिथ्या है। चित्रलेखा का प्रेम सागर की भाँति गम्भीर है, उसका बदलना असम्भव-सा है। पर साथ ही मैं यह मानती हूँ और इसको ठीक भी समझती हूँ कि प्रेम परिवर्तनशील है। प्रकृति का नियम परिवर्तन है, प्रेम उसी प्रकृति का एक भाव है। प्रकृति का नियम प्रेम पर भी लागू हो सकता है।”

कटु होते हुए भी चित्रलेखा ने जो कुछ कहा वह किसी अंश तक सत्य था—इसका बीजगुप्त ने अनुभव किया। बात सत्य थी, कहने का अवसर उच्युक्त था; और बात का प्रसंग भी समयोचित था। बीजगुप्त ने अनुभव किया कि चित्रलेखा उससे दूर हटती जा रही है और वह चित्रलेखा से। एक अज्ञात शक्ति, अथवा प्रेरणा इन दो प्राणियों के बीच में आ गयी है।

“चित्रलेखा ! तुम भूलती हो। प्रेम का सम्बन्ध आत्मा से है प्रकृति

से नहीं है। जिस वस्तु का प्रकृति से सम्बन्ध है वह वासना है क्योंकि वासना का सम्बन्ध वाह्य से है। वासना का लक्ष्य वह शरीर है जिस पर प्रकृति ने कृपा करके उसको सुन्दर बनाया है। प्रेम आत्मा से होता है शरीर से नहीं। परिवर्तन प्रकृति का नियम है, आत्मा का नहीं। आत्मा का सम्बन्ध अमर है।

चित्रलेखा हँस पड़ी, “आत्मा का सम्बन्ध अमर है! बड़ी विचित्र बात कह रहे हो बीजगुप्त! जो जन्म लेता है वह मरता है; यदि कोई अमर है तो अजन्मा भी है। जहाँ सृष्टि है वहाँ प्रलय भी रहेगा। आत्मा अजन्मा है इसलिए अमर है, पर प्रेम अजन्मा नहीं है; किसी व्यक्ति से प्रेम होता है तो उस स्थान पर प्रेम जन्म लेता है। सम्बन्ध होना ही उस सम्बन्ध का जन्म लेना है। वह सम्बन्ध अनन्त नहीं है, कभी-न-कभी उस सम्बन्ध का अन्त होगा ही। प्रेम और वासना में भेद केवल इतना है कि वासना पागलपन है जो क्षणिक है और इसीलिए वासना पागलपन के साथ ही दूर हो जाती है, और प्रेम गम्भीर है उसका अस्तित्व शोध नहीं मिटता। आत्मा का सम्बन्ध अनादि नहीं है बीजगुप्त!”

बीजगुप्त ने देखा कि चित्रलेखा की तर्कना-शक्ति बहुत बढ़ गयी है। बीजगुप्त का यह वार भी खाली गया—बीजगुप्त तड़प उठा। “जो कुछ तुम कहती हो वह ठीक हो सकता है! मैं उसका विरोध नहीं करता। यह तो अपना विश्वास है, पर इतना यहाँ पर कह देना अनुचित न होगा कि उन्माद और ज्ञान में जो भेद है वही वासना और प्रेम में है। उन्माद अस्थायी होता है और ज्ञान स्थायी। कुछ क्षणों के लिए ज्ञान लोप हो सकता है पर वह मिटता नहीं। जब पागलपन का प्रहार होता है, ज्ञान लोप होता हुआ विदित होता है पर उन्माद बीत जाने के बाद ही ज्ञान स्पष्ट हो जाता है। यदि ज्ञान अमर नहीं है तो प्रेम भी अमर नहीं है, पर मेरे मत में ज्ञान अमर है—ईश्वर का एक अंश है और साथ ही प्रेम भी।”

चित्रलेखा उस समय लेटी हुई थी, उसकी आँखें अधखुली थीं, उसके सुन्दर मुख पर उन्माद अठखेलियाँ कर रहा था। वह उठ बैठी, उसने कहा, “बीजगुप्त ! ठीक कहते हो, मैं भ्रम में थी, भ्रम के आवरण में मैं अपने को भल गयी थी—क्षमा करना !” इतना कह कर उसने अपने हाथ बीजगुप्त के गले में डाल दिये ।

श्वेतांक ने यह देखा—वह उठ खड़ा हुआ। बीजगुप्त ने कहा, “श्वेतांक ! तुम जा सकते हो। रथ अभी मत खुलवाना, आज मेरा निमन्त्रण है और तुम्हारा भी ।”

नवाँ परिच्छेद

आर्यश्रेष्ठ मृत्युञ्जय जन्म से क्षत्री होते हुए भी कर्म से ब्राह्मण थे। पाटलिपुत्र के इस वयोवृद्ध सामन्त के भवन में उल्लास-विलास के स्थान में त्याग और विराग का आधिपत्य था। लोग उनकी उपमा विदेह से देते थे, और वे इस उपमा के योग्य भी थे। सारा नगर मृत्युञ्जय के नाम से परिचित था—बहुत थोड़े से चुने हुए व्यक्ति उनके व्यक्तित्व के थे। मृत्युञ्जय का क्षेत्र क्रीड़ा और कोलाहल से भरा हुआ जनरवन था, उनका क्षेत्र था, उपासना और ध्यान—निरन्तर एकान्त।

इस एकान्तवासी क्षत्रिय के पास धन था और वैभव था। नगर के प्रमुख सामन्तों में उसकी गणना थी और राज्य-सभा में उसका आसन ऊँचा। उसका नाम सुनकर लोग आदर से मस्तक नमा देते थे और उसके सम्मुख होते ही लोगों में उसके प्रति भक्ति भाव उमड़ पड़ता था। आर्य-श्रेष्ठ मृत्युञ्जय की साधना विशाल थी, उनमें आत्मिक बंल था और आध्यात्मिक ज्योति।

मृत्युञ्जय के पुत्र न था, केवल एक कन्या थी। कन्या का नाम था यशोधरा। एकमात्र सन्तान होने के कारण मृत्युञ्जय का यशोधरा पर स्नेह था। उस समय यशोधरा की अवस्था प्रायः अठारह वर्ष की थी। यशोधरा के यौवन के विकास का काल था, और मृत्युञ्जय के जीवन के निवाण का। अगाध सम्पत्ति की स्वामिनी यशोधरा से विवाह करने के लिए प्रत्येक नवयुवक का तत्काल तत्पर हो जाना तो स्वाभाविक था ही, पर साथ ही यशोधरा सुन्दरी थी, और सुन्दर भी उच्च कोटि की। उसके शान्त मुख-पण्डल पर भोलापन अपना आधिपत्य जमाये हुए था, उसकी हँसी की सुरीली झंकार में यौवन से पराजित वचपन ने शरण ली थी। हरिणी की-सी बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखों में संकोच था और उसके

रस-युक्त अरुण कपोलों में लज्जा थी। यशोधरा का यौवन सुश्रा और उत्तलास का मिश्रण था, उसमें गर्व की उच्छृङ्खलता न थी, उसमें लज्जा की शान्ति थी।

वृद्ध मृत्युञ्जय यशोधरा के लिए वर खोज रहे थे, एकाएक उनकी दृष्टि बीजगुप्त पर पड़ी। बीजगुप्त का विवाह न हुआ था, और बीजगुप्त उच्च कुल का नवयुवक था। मृत्युञ्जय के हितैषियों ने—और उन हितैषियों में वे व्यक्ति भी थे जिनके हृदयों में यशोधरा को पुत्र-बधू बनाने की लालसा प्रवल थी—मृत्युञ्जय से एक नहीं अनेक बार बीजगुप्त और चित्रलेखा के सम्बन्ध का वर्णन किया; पर अनुभवी और वृद्ध मृत्युञ्जय ने सदा यहीं उत्तर दिया, “यह बीजगुप्त के उन्माद का काल है; भविष्य बहुत लम्बा चौड़ा है और बीजगुप्त यथेष्ट शिक्षित। वह इस समय अनुभव-सागर में तिर रहा है।”

बीजगुप्त उस दिन मृत्युञ्जय के घर पर आमन्त्रित था। यशोधरा की वर्ष-गाँठ के उपलक्ष्य में मृत्युञ्जय के यहाँ एक विशाल उत्सव था। बीजगुप्त ने यशोधरा को एक-आध बार जब वह निरी बालिका थी, देखा था। मृत्युञ्जय से उसका विशेष परिचय भी न था। उस दिन मृत्युञ्जय के यहाँ से निमन्त्रण पाकर उसे आश्चर्य हुआ और उससे भी अधिक आश्चर्य उस समय हुआ जब उसने यह पढ़ा कि वह चित्रलेखा के साथ आमन्त्रित है।

बीजगुप्त ने चित्रलेखा से कहा, “चित्रलेखा ! एक विचित्र बात हुई है। तुम वयोवृद्ध मृत्युञ्जय को जानती होगी।”

“हाँ !”

“और-सम्भवतः उनकी कन्या यशोधरा को !”

कुछ सोचकर चित्रलेखा ने कहा, “हाँ, उसे भी एक-आध बार देखा है।”

“यशोधरा की वर्ष-गाँठ के उपलक्ष्य में आज मृत्युञ्जय के यहाँ उत्सव में आमन्त्रित हूँ। मेरा मृत्युञ्जय से अधिक परिचय नहीं है,

इसीलिए इस निमन्त्रण को पाकर मुझे आश्चर्य हुआ है पर इससे भी अधिक आश्चर्य मुझको इस बात पर हुआ है कि मेरे साथ-साथ तुम भी आमन्त्रित हो और तुम्हें मेरे द्वारा निमन्त्रण मिला है !”

“इसका अर्थ यह है कि मेरा जाना अनुचित है ।”

“नहीं चित्रलेखा ! तुम्हें निमन्त्रण मिला है मेरे द्वारा और मेरे साथ चलने को । यह उचित भी है क्योंकि समाज तुम्हारे और मेरे सम्बन्ध को पवित्र मानता है ।”

चित्रलेखा ने कुछ देर तक चुप रहने के बाद कहा, “बीजगुप्त ! मैं उच्चकुलों के उत्सवों में केवल नर्तकी की स्थिति में ही जाने की अभ्यस्त हूँ, बहुत सम्भव है कि कुलीन स्त्रियाँ मेरा अपमान करें । यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गयी तो क्या करना होगा यह मैं नहीं जानती ।”

बीजगुप्त हँस पड़ा, “मेरे साथ रहते हुए तुम्हारा अपमान करने का साहस किसी को न पड़ेगा, यह विश्वास रखो ।” इतना कहकर बीजगुप्त ने श्वेतांक को बुलाया ।

श्वेतांक के साथ दोनों बाहर निकले । बीजगुप्त के रथ पर चित्रलेखा और बीजगुप्त आरूढ़ हुए, श्वेतांक ने घोड़ों की लगाम ली ।

निर्धारित समय पर आमन्त्रित अतिथि मृत्युञ्जय के द्वार पर पहुँचे । प्रहरी ने उच्चस्वर से कहा, “महासामन्त बीजगुप्त का रथ द्वार पर है ।” यशोधरा के साथ मृत्युञ्जय द्वार पर आये । मृत्युञ्जय ने बीजगुप्त का स्वागत किया और यशोधरा ने चित्रलेखा का—श्वेतांक पीछे पीछे चला ।

द्वार पार कर सब लोग नृत्य-भवन में पहुँचे । पाटलिपुत्र के प्रायः सभी प्रभावशाली व्यक्ति उपस्थित थे, सबों ने बीजगुप्त तथा चित्रलेखा के आने पर हर्ष-ध्वनि की । चित्रलेखा यशोधरा के साथ स्त्रियों के समुदाय में चली गयी, बीजगुप्त मृत्युञ्जय के साथ रहा ।

यशोधरा को देखकर चित्रलेखा चकित हो गयी । उसे आज तक अपनी सुन्दरता पर गर्व था और आत्म-विश्वास था, पर यशोधरा ने एक क्षण में उसका गर्व दूर कर दिया, आत्म-विश्वास डिगा दिया ।

यशोधरा ने आदर-पूर्वक चित्रलेखा को आसन दिया और स्वयम् उसके पास बैठ गई। यशोधरा को चित्रलेखा के पास बैठा देखकर और चित्रलेखा का विशेष आदर करते देखकर अन्य महिलाओं को बुरा भी लगा।

अपने बाल्यकाल में यशोधरा ने चित्रलेखा का नृत्य देखा था, उस समय वह चित्रलेखा के नृत्य से प्रभावित भी हुई थी; आज उसे उसके पिता का आदेश था कि वह चित्रलेखा के साथ रहे; यह काम यशोधरा को रुचिकर था।

चित्रलेखा के चारों ओर युवतियाँ एकत्रित हो गयी थीं—कुछ हँस रही थीं और कुछ व्यंग वचन कर रही थीं, पर चित्रलेखा ने इसका बुरा न माना, अपनी स्थिति वह बहुत अच्छी तरह से समझती थी। पास ही खड़ी हुई एक बहुत बड़े सामन्त की स्त्री ने कहा, “आज नर्तकी चित्रलेखा को हमारी समता करके हमारे समाज में आने के उपलक्ष्य में बधाई है !”

बात जितनी कटु थी, उत्तर उससे अधिक कटु था, “अपने सौन्दर्य के बल से अभिमानिनी स्त्रियों को अपना स्वागत कराने के लिए बाध्य करने वाली को बधाई की कोई आवश्यकता नहीं।”

एक ने दूसरी की ओर देखा और दूसरी ने तीसरी की ओर। बात जिस तीव्रता से कही गई थी, उसका प्रभाव एकत्रित पुरुष समुदाय पर भी पड़ा। बीजगुप्त उस ओर धूम पड़ा। उसे भय था कि चित्रलेखा का, बहुत सम्भव है, अपमान हो; इस उत्तर और प्रत्युत्तर से उसका भय और बढ़ गया। “क्या बात है ?”

चित्रलेखा का त्रोध से लाल मुख एकदम शान्त हो गया, “कुछ नहीं, आपस में हँसी हो रही थी !” उस समय चित्रलेखा हँस रही थी।

यशोधरा चित्रलेखा के इस भाव-परिवर्तन पर मुख्य हो गयी, बीज-गुप्त के जाने के बाद उसने चित्रलेखा से कहा, “वहिन, तुम लोक-व्यवहार में बहुत कुशल हो !”

“तभी तो इतनी प्रभावशालिनी हूँ !” चित्रलेखा हँस पड़ी। चित्रलेखा की हास्य-ध्वनि भंकृत हो उठी, नवयुवक समुदाय की

आँखें उधर उठ गयीं। वीजगुप्त से उसी समय उन नवयुवकों ने गाने का प्रस्ताव किया।

वीणा लेकर वीजगुप्त ने वागीश्वरी की आलाप भरी—चारों ओर निस्तब्धता छा गई। स्त्री और पुरुष दोनों मंत्र-मुग्ध से वीजगुप्त के गाने को सुन रहे थे। वीजगुप्त ने गाना समाप्त कर दिया। इसके बाद मृत्युञ्जय ने स्वयम् वीणा लेकर यशोधरा की ओर संकेत किया। यशोधरा ने भी वागीश्वरी गाना आरम्भ किया। यशोधरा का गाना समाप्त होने पर लोगों ने अनुभव किया कि वीजगुप्त के गाने के आगे यशोधरा का गाना फीका था। चित्रलेखा ने लोगों के ये भाव पढ़ लिये, उसने कहा, “यशोधरा से एक प्रार्थना मैं भी करूँगी—यदि उसकी इच्छा हो तो इस समय वह कल्याण में कोई गाना गावे।”

लोगों की दृष्टि चित्रलेखा की ओर धूम गयी। मृत्युञ्जय ने चित्रलेखा की ओर देखा, वे चित्रलेखा के कथन के महत्व को न समझ सके। फिर भी प्रार्थना एक आमन्त्रित अतिथि द्वारा की गयी थी, मृत्युञ्जय ने वीणा में कल्याण के स्वर भरे और यशोधरा ने गाना आरम्भ किया। इस बार यशोधरा ने सबको मुग्ध कर दिया, लोग उसकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करने लगे। गान समाप्त हो गया और चित्रलेखा ने यशोधरा को बधाई दी, “बहिन यशोधरा, मैं तुम्हारे सुन्दर गायन के उपलक्ष्य में बधाई देती हूँ।”

मृत्युञ्जय चित्रलेखा की प्रार्थना का महत्व अब समझे, “और चित्रलेखा, मैं तुम्हारे यशोधरा की ओर से धन्यवाद देता हूँ।”

इस वार्तालाप को वीजगुप्त सुन रहा था, हँसते हुए उसने कहा “क्या अब मैं चित्रलेखा से अपना नृत्य दिखलाने की प्रार्थना कर सकता हूँ?”

चित्रलेखा ने हँसते हुए उत्तर दिया, “वीजगुप्त की प्रार्थना मेरे लिए आज्ञा के समान है?”

मृत्युञ्जय ने वीणा ली और वीजगुप्त ने मृदंग। चित्रलेखा ने नृत्य

आरम्भ कर दिया। सब लोग चित्रलेखा की प्रशंसा कर रहे थे। और चित्रलेखा अपना कौशल दिखला रही थी। इसी समय प्रहरी ने पुकारा, “योगी कुमारगिरि अपने शिष्य के साथ द्वार पर पधारे हैं।”

मृत्युञ्जय ने बीणा रख दी, वे कुमारगिरि का स्वागत करने बाहर चले गये। मृत्युञ्जय के बीणा रखने के साथ ही चित्रलेखा का नृत्य बन्द हो गया।

मृत्युञ्जय कुमारगिरि को भीतर ले आये, कुमारगिरि के साथ विशालदेव भी था। कुमारगिरि के सामने सब लोग खड़े हो गये। उसी समय चित्रलेखा ने बीजगुप्त से कहा, मैं अब जाऊँगी, मेरा काफी अपमान हो चुका है।”

“यह कैसे ?”

“मेरी दृष्टि में कला का सर्वोच्च स्थान है। जो मनुष्य कला का अपमान करता है वह मनुष्य नहीं है, पशु है। मृत्युञ्जय को कुमारगिरि का स्वागत करने के लिए नृत्य को बन्द कर देना मेरा अपमान नहीं है तो क्या है ?”

बीजगुप्त मुस्कराया, “जैसी तुम्हारी इच्छा।”

इस समय तक कुमारगिरि आसन पर बैठ गये थे। चित्रलेखा ने आगे बढ़कर योगी कुमारगिरि का अभिवादन किया, फिर उसने मृत्युञ्जय से कहा, “मैं जाने की आज्ञा चाहती हूँ।”

मृत्युञ्जय के उत्तर देने के पहिले ही कुमारगिरि ने उत्तर दिया, “यह क्यों ? क्या मेरी उपस्थिति तुम्हें अरुचिकर है नर्तकी ? और यह स्वाभाविक भी है।” कुमारगिरि का शिशु का-सा कोमल तथा मधुर हास्य संगीत की भाँति गूंज उठा।

चित्रलेखा ने कुछ सोचकर कहा, “नहीं, योगी, तुम्हारी उपस्थिति संसार में किसी को अरुचिकर नहीं हो सकती, इतना विश्वास रख्तो। मेरे यहाँ से जाने का दूसरा कारण है ?”

“पर तुमने जाने का अवसर उचित नहीं चुना।”

“तो फिर मैं न जाऊँगी ।”

मृत्युञ्जय ने बीणा फिर उठाई, पर चित्रलेखा ने नृत्य आरम्भ करने से इंकार कर दिया । इस बार यशोधरा ने आगे बढ़कर चित्रलेखा से कहा, “वहिन, तुम्हारी बात मैंने नहीं टाली थी, इस बार मेरा अनुरोध है कि तुम नृत्य करो, और मेरा अनुरोध तुम न टालोगी इसका मुझे विश्वास है !”

चित्रलेखा ने यशोधरा का अनुरोध वास्तव में न टाला, उसने नृत्य आरम्भ कर दिया । योगी कुमारगिरि ने यशोधरा की ओर देखा—और थोड़ी देर तक वे एकटक यशोधरा की ओर देखते रहे । योगी ने चित्रलेखा और यशोधरा की तुलना आरम्भ कर दी । दोनों ही उच्च-क्लोटि की सुन्दरियाँ थीं पर एक में मादकता प्रधान थी और दूसरी में शान्ति । चित्रलेखा की मादकता भयानक थी—उसका नृत्य उसकी सजीवता की प्रतिमूर्ति । पर साथ ही यशोधरा की शान्ति अथाह सिन्धु की भाँति थी जिसमें पड़कर मनुष्य अपने को भूल जाता है । चित्रलेखा जीवन की हलचल थी, यशोधरा मृत्यु की शान्ति ! कुमारगिरि को अनुभव हुआ मानो वह संसार की ओर आकर्षित हो रहा है, अनुराग की सजीवता विराग की अकर्मण्यता पर विजय पा रही है ।

नृत्य समाप्त हुआ, मृत्युञ्जय ने दासी से पूछा, “भोजन में कितना विलम्ब है ?”

“भोजन तैयार है केवल आज्ञा की देर है ।”

आमन्त्रित अतिथि भोजन-गृह में जाकर बैठ गये । दासियों ने भोजन परसना आरम्भ किया । बीजगुप्त के पास यशोधरा बैठी—चित्रलेखा यशोधरा के पास थी और उसी के पास श्वेतांक ।

भोजन आरम्भ हुआ और पास बैठे हुए अतिथियों में वार्तालाप । यशोधरा पहिले कभी बीजगुप्त से न बोली थी, बीजगुप्त ने कहा “देवि ! आज पहिली बार हमारा पूरा परिचय हुआ है, और इस श्रिचय पर मैं अपने को बधाई देता हूँ ।”

अपने जीवन में आज पहिली बार यशोधरा की हरिणी की-सी बड़ी-बड़ी अँखें एक दूसरे मनुष्य की आँखों के सामने न उठ सकीं। यशोधरा का हृदय धड़क रहा था, धीरे से उसने उत्तर दिया, “मेरा परिचय कोई महत्व की बात नहीं है।”

बातचीत सुनकर चित्रलेखा हँस पड़ी, “भगवान करे यह परिचय घनिष्ठता में परिणत हो, और घनिष्ठता जीवन के पवित्र वन्धन में !”

यशोधरा ने कृतज्ञता भरे नेत्रों से चित्रलेखा की ओर देखा, वीजगुप्त ने कौतूहल से। पर श्वेतांक एकटक यशोधरा की ओर देख रहा था। एकाएक यशोधरा की आँखें श्वेतांक की आँखों से मिल, गयीं। इस समय तक यशोधरा ने श्वेतांक को न देखा था। अपने भवन में आमन्त्रित प्रत्येक व्यक्ति को वह पहिचानती थी, श्वेतांक केवल ऐसा व्यक्ति था जिसको वह नहीं जानती थी। वीजगुप्त से यशोधरा ने पूछा “यह नवयुवक कौन है ?”

“मेरा सेवक और साथ ही मेरा छोटा भाई !” वीजगुप्त हँस पड़ा।

यशोधरा को कौतूहल हुआ—“सेवक और छोटा भाई !” बात भी विचित्र थी, “यह कैसे ?”

“यह इस प्रकार कि इस व्यक्ति का नाम श्वेतांक है। यह भी क्षत्रिय नवयुवक है और उच्चकुल का है, पर अभी तक ब्रह्मचारी है और अपने गुह के साथ रहा है। गुह ने पाप का पता लगाने के लिए इस व्यक्ति को मेरे पास छोड़ दिया है—मेरे द्वारा यह नवयुवक समाज में पदार्पण कर रहा है।”

यशोधरा का आश्चर्य और भी बढ़ा, “पाप का पता लगाने के लिए इनके गुह ने इनको आपके पास भेजा है ? क्या वास्तव में आपका स्थान अथवा आपके व्यक्तित्व से सम्पर्क पाप का पता लगाने का उपयुक्त स्थान है ?”

वीजगुप्त मन-ही-मन हँसा। कितनी भोली बालिका थी और कितने भ्रम में थी, “सम्भवतः पापी से पापी मनुष्य नहीं कह सकता कि वह

पापी है। प्रत्येक व्यक्ति अपने को अच्छा समझता है, अपने को ठीक तरह से समझना उसके लिए असम्भव है। यदि श्वेतांक इस निर्णय पर पहुँचे कि मैं पापी हूँ, तो मैं वास्तव में पापी हूँ।”

यशोधरा के उर में एक ठेस-सी लगी। जिस व्यक्ति के प्रणय-बन्धन की कल्पना से उसका हृदय प्रकुल्लित हो उठा था, वही व्यक्ति एक बहुत बड़े आचार्य द्वारा पाप का पता लगाने का उपयुक्त साधन माना गया था। उसने श्वेतांक की ओर देखा—कितना भोला और सुन्दर नवयुवक था। और वीजगुप्त?

उस समय भोजन समाप्त हो गया था। लोग उठ खड़े हुए; हाथ मुह धोकर फिर सब लोग एकत्रित हुए। वीजगुप्त ने श्वेतांक का हाथ पकड़कर मृत्युञ्जय से उसका परिचय कराया। इसके बाद सब लोग अपने-अपने घर को विदा हुए।

दसवाँ परिच्छेद

मृत्युञ्जय के उस आलोकित भवन का आलोक वैसा ही रहा, सजीवता में कमी अवश्य हो गई थी। अनावश्यक अतिथियों के चले जाने के बाद नाटक के प्रधान अभिनेता ही रह गये। योगी कुमारगिरि, विशालदेव, चित्रलेखा, बीजगुप्त और श्वेतांक, केवल इन्हीं व्यक्तियों को मृत्युञ्जय ने रोक लिया था। थोड़ी देर तक मौन रहने के बाद मृत्युञ्जय ने बीजगुप्त का हाथ पकड़ा। उन्होंने भरे हुए गले से कहा, “सामंत बीजगुप्त ! इस उत्सव में एक बड़ा रहस्य छिपा था और उस रहस्य-से तुम्हारा बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है।” इतना कहकर उन्होंने यशोधरा की ओर अर्थ भरी दृष्टि से देखा। बीजगुप्त के मुख का रंग उत्तर गया, चित्रलेखा मुसकराई।

“और मुझे पूर्ण आशा है कि वृद्ध मृत्युञ्जय की बात अस्वीकृत न होगी।”

मृत्युञ्जय के भावों की थाह प्रायः सब व्यक्तियों ने पा ली थी, फिर भी बीजगुप्त ने कहा, “देव ! स्वीकार करना अथवा न करना प्रस्ताव की उपयुक्तता और परिस्थिति की अनुकूलता पर निर्भर होता है। आप का प्रस्ताव जैसा होगा उसके अनुसार मेरा उत्तर भी होगा।”

मृत्युञ्जय ने कुछ देर तक सोचा, “बीजगुप्त, तुम्हारा विवाह अभी तक नहीं हुआ है।”

बीजगुप्त ने सुना—और चित्रलेखा की ओर देखा। क्या उत्तर दे, वह यह निर्णय न कर सका। बात ठीक थी, पर साथ-साथ बीजगुप्त के मतानुसार गलत भी थी, “शास्त्रानुसार नहीं।”

इस बार कुमारगिरि ने गम्भीर स्वर में कहा, “युवा ! क्या शास्त्र-अविहित भी विवाह हो सकता है ?”

बीजगुप्त ने कहा, “स्त्री और पुरुष के चिर-स्थायी सम्बन्ध को हीं विवाह कहते हैं।”

कुमारगिरि हँस पड़े, “पर विवाह शब्द समाज द्वारा निर्भित है, शास्त्र स्त्री और पुरुष के सम्बन्ध को पवित्र बनाकर समाज में मान्य करा देता है। बीजगुप्त, तुम अर्ध-सत्य की शरण ले रहे हो !”

बीजगुप्त ने उसी गम्भीरता से कहा, “योगिराज, सत्य आधा नहीं होता, वह पूर्ण होता है। पर यह तर्क-वितर्क का समय नहीं है, इसलिए इस समय उत्तर देना अनुचित होगा।” इतना कहकर बीजगुप्त ने मृत्युञ्जय से कहा, “आर्य ! मैंने कहा था कि मेरा विवाह शास्त्रानुसार नहीं हुआ है इसको स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा। लोक की दृष्टि में मैं अविवाहित हूँ, पर मैं वास्तव में विवाहित हूँ। चित्रलेखा मेरी पत्नी है। यद्यपि चित्रलेखा का पाणिग्रहण मैंने शास्त्रानुसार नहीं किया है, और समाज के नियमों के अनुसार कर भी नहीं सकता हूँ, फिर भी मेरा और चित्रलेखा का सम्बन्ध पति और पत्नी का-सा है। मैं प्रेम में विश्वास करता हूँ—और ऐसी स्थिति में मेरा अब विवाह करना असम्भव है क्योंकि मेरे प्रेम की अधिकारिणी कोई दूसरी स्त्री नहीं हो सकती।”

जिस समय बीजगुप्त यह कह रहा था, उसकी दृष्टि नीचे थी। मृत्युञ्जय ने कहा, “बीजगुप्त; तुम्हारा कहना सम्भव है उचित हो, पर जिस समय लोक तुमको अविवाहित कहता है, उस समय तुम अविवाहित हो। रही विवाह करने की बात, वहाँ तुमसे मैं तुम्हारा ध्यान इस ओर आकर्षित करा सकता हूँ कि विवाह पुत्रोत्पत्ति के लिए होता है और इसलिए आवश्यक है। चित्रलेखा की सन्तान बीजगुप्त की सन्तान न होगी और न वहं सन्तान बीजगुप्त की उत्तराधिकारी हीं हो सकती है। कभी इस पर भी विचार किया है ?”

वास्तव में बीजगुप्त ने इसपर विचार न किया था, बीजगुप्त ने इसका कोई उत्तर न दिया। यह उसके लिए बिलकुल नई समस्या थी।

मृत्युञ्जय इस बार चित्रलेखा की ओर मुड़े, “देवि चित्रलेखा ! तुम विदुषी हो । तुमसे अधिक कहना व्यर्थ है । तुम वीजगुप्त की परिस्थिति को अच्छीं तरह से समझती हो ।”

चित्रलेखा अभीं तक मौन थी । इस बार उसने उत्तर दिया, “आर्यश्रेष्ठ ! तुम्हारा क्यन सर्वथा उचित है । मैं समाज-च्युत नर्तकी ही हूँ, वीजगुप्त की पत्नी होना मेरे लिए असम्भव है । ऐसीं स्थिति मैं मैं वह करने को प्रस्तुत हूँ जिससे वीजगुप्त का भला हो । पर आप इतना जानते हैं कि ऐसा करने में मुझे बड़ा त्याग करना पड़ेगा !”

“त्याग करना पड़ेगा नर्तकी !” कुमारगिरि मुसकराए, “बड़ी विचित्र बात कह रहीं हो । तुम सम्भवतः अपनी मनः प्रवृत्ति को भूल रहीं हो । तुमने एक बार मुझसे कहा था कि तुम विराग के जीवन को अपनाना चाहतीं हो, उसके लिए यह सबसे अच्छा अवसर है ।”

कुमारगिरि की इस बात से वीजगुप्त चौंक पड़ा । उसने कहा, “योगिराज, यदि आप विराग पर विश्वास करते हैं, और एक व्यक्ति को विराग का उपदेश दे सकते हैं, तो फिर मुझे क्यों बन्धन में बँधने को बाध्य किया जा रहा है ?”

“इसलिए कि तुम विराग के योग्य नहीं हो । और साय ही तुम समाज के नियमों के प्रतिकूल भी चल रहे हो । तुम्हें यह उचित होगा कि तुम कम-से-कम समाज के नियमों का तो पालन करो ही ।”

चित्रलेखा इस समय तक कुमारगिरि के क्यन पर विचार कर रही थी, उसने कहा, “योगी, एक प्रश्न और कहाँगी, क्या तुम मुझे गुहदीक्षा देने के लिए तैयार हो ? यदि हाँ तो फिर इसीं समय में तुम्हारी शिष्या हुई ।”

कुमारगिरि के नेत्र स्वयम् हीं विशालदेव की ओर धूम पड़े, विशाल-देव उस समय अपने गुह की ओर देख रहा था । थोड़ीं देर तक कुमारगिरि कुछ सोचते रहे, “नर्तकी चित्रलेखा ! तुम्हें दीक्षा देना मेरे लिए असम्भव है !”

इस बार चित्रलेखा हँस पड़ीं, “मुख से कह देना सरल होता है, करना बड़ा कठिन कार्य है। योगी ! तुम्हारे लिए विराग चाहे जितना सरल हो, पर मेरे लिए कठिन है। अकेलीं विराग के क्षेत्र में विचरना मेरे लिए असम्भव-सा है। अभी तक अनुराग के क्षेत्र में हूँ, और संसार भले ही उस क्षेत्र को पवित्र न माने पर ईश्वर के आगे और मेरे आगे वह क्षेत्र पवित्र है। उससे बाहर निकलने के अर्थ होते हैं दूषित क्षेत्र में पदार्पण करना, और व्यर्थ पाप करने के लिए मैं प्रस्तुत नहीं हूँ।”

बात बनीं, और विगड़ गयीं, मृत्युञ्जय ने इसका अनुभव किया।

बात विगड़ी और बन गई। बीजगुप्त ने इसका अनुभव किया।

कुमारगिरि चित्रलेखा को जानता था और चित्रलेखा कुमारगिरि को। श्वेतांक और विशालदेव—दोनों हीं इस बात-चीत के गूढ़ महत्व को समझ रहे थे। एक यशोधरा हीं ऐसी थीं जो न कुछ अनुभव करती थीं, न कुछ जानती थीं और न कुछ समझतीं थीं। उसने मृत्युञ्जय से कहा “पिता जी ! रात्रि अधिक बीत गई है।”

वृद्ध मृत्युञ्जय ने अपनी पुत्री की ओर देखा और फिर चित्रलेखा की ओर। दोनों में कितना भेद था, एक देवी थीं, दूसरीं दानवीं; एक शान्ति थीं, दूसरी उन्माद। और बीजगुप्त ? परिस्थिति-चक्र का एक अभागा शिकार, पर साथ ही मनुष्यता से पूर्ण मनुष्य।

मृत्युञ्जय ने चित्रलेखा से कहा, “तुम्हारे क्षेत्र को अपवित्र कौन कहता है ! जो कुछ तुम कर रहीं हो वह अपनी मनःप्रवृत्ति के अनुसार और मैं यह भी मानता हूँ कि तुम्हारा सारा व्यवहार प्रेम का है। प्रेम के क्षेत्र में अपवित्रता का कोई स्थान नहीं है। पर देवि, क्या वह मनुष्य जिससे तुम प्रेम करती हो, यदि ठींक मार्ग पर न हो, तो उसको ठींक मार्ग पर लाना तुम्हारा कर्तव्य नहीं है ? प्रेम में त्याग की आवश्यकता होती है, और बीजगुप्त के लिए जो त्याग तुम करोगी वह महान होगा।”

बात जिस ढंग से कही गई थीं उसका चित्रलेखा पर प्रभाव पड़ा। बीजगुप्त बीच ही में बोल उठा, “आर्यश्रेष्ठ ! चित्रलेखा से यह कहता

व्यर्थ है। बनना और बिगड़ना इसका उत्तरदायित्व मुझपर है, चित्रलेखा न मुझे बना सकती है और न बिगड़ सकती है। और मैं अपने लिए यह कह सकता हूँ कि मेरा और चित्रलेखा का सम्बन्ध अमर है।”

बीजगुप्त उठ खड़ा हुआ पर चित्रलेखा बैठी ही रही। उसने कहा, “आर्यश्रेष्ठ ! तुम जो बात कह रहे हो वह ठीक हो या न हो, पर मुझे यह करना होगा, और यह करना होगा अपने लिए नहीं, बर्तन् बीजगुप्त के लिए—इतना विश्वास रखो।” चित्रलेखा ने यशोधरा की ओर देखा, “और आर्यश्रेष्ठ ! तुम्हारी कन्या के लिए बीजगुप्त अच्छा वर है। यह विवाह सबसे सुन्दर होगा।” इतना कहकर चित्रलेखा ने बीजगुप्त से कहा, “बीजगुप्त ! तुम्हें यशोधरा-सी पत्नी मिलना असम्भव है, आज से तुम्हारा और यशोधरा का सम्बन्ध पक्का हो गया।”

बीजगुप्त उस समय द्वार के पास खड़ा था, “चित्रलेखा, तुम्हारा कहना अनुचित है और यह मेरे लिए असम्भव है। इस समय मैं इतना ही कह सकता हूँ। अच्छा आर्यश्रेष्ठ विदा !” इतना कहकर बीजगुप्त मृत्युञ्जय के भवन से बाहर चला गया।

चित्रलेखा उठ खड़ी हुई, “आर्यश्रेष्ठ ! आप बीजगुप्त के कथन का बुरा न मानियेगा। आवेश में आकर मनुष्य भले और बुरे का ज्ञान, खो बैठता है, उस समय यदि कोई दूसरा व्यक्ति उसपर अपनी धारणा बना ले तो अनुचित है। मैं आपको इतना विश्वास दिलाती हूँ कि बीजगुप्त का और आपकी कन्या का सम्बन्ध बहुत श्रेष्ठ होगा, और इस सम्बन्ध का होना आवश्यक भी है।”

इवेतांक के साथ चित्रलेखा भी बीजगुप्त के पीछे-पीछे चल दी। इन लोगों के चले जाने के बाद मृत्युञ्जय को परिस्थिति का पूर्ण ज्ञान हुआ। उन्होंने कुछ देर तक मौन रहकर कुमारगिरि से कहा, “योगी-राज ! मेरी समझ में कुछ नहीं आया, पर इस बात-चीत से इस निष्कर्ष पर पहुँच सका हूँ कि इस नर्तकी का बीजगुप्त पर बहुत बड़ा प्रभाव है।”

“यह अनुमान उचित है।”

“और साय ही नर्तकीं चित्रलेखा का हृदय बहुत स्वच्छ है ।”

इसपर कुमारगिरि मौन हीं रहे। उनकी आँखें न जानें क्यों आप-हीं-आप विशालदेव कीं ओर उठ गयीं। विशालदेव मन-हीं-मन मुसकराया।

मृत्युञ्जय ने फिर कहा, “योगिराज, क्या बीजगुप्त पर अधिक दबाव डालना उचित होगा ? प्रश्न यह है। चित्रलेखा कह गई है, और जो कुछ वह कह गयी है उसे पूरा करेंगीं, इतना विश्वास है; फिर भीं अब यह इच्छा होती है कि बीजगुप्त को छोड़ हीं दिया जाय; क्योंकि चित्रलेखा के मन को आवात पहुँचेगा ।”

इस बार कुमारगिरि बोले, “चित्रलेखा के मन को आवात पहुँचेगा, इसपर मैं विश्वास नहीं कर सकता। बहुत सम्भव है चित्रलेखा स्वयम् ही बीजगुप्त को छोड़ देने पर प्रस्तुत हो, और ऐसीं अवस्था में बीजगुप्त का जीवन सम्हल जावगा। मैं तो यहाँ तक कहूँगा कि चित्रलेखा से बीजगुप्त का सम्बन्ध टूटना ही उचित है ।”

कुमारगिरि उठ खड़े हुए, और कहा, “मृत्युञ्जय, यशोधरा के लिए बीजगुप्त से अच्छा वर तुमको न मिल सकेगा—यह समझ रखना ।”

ग्यारहवाँ परिच्छेद

चित्रलेखा ने अपने जीवन में न जाने कितनी बार प्रेम की व्याख्या की थीं और प्रत्येक बार उसने अनुभव किया था कि उसका पिछला निर्णय गलत था ।

सबसे प्रथम प्रेम चित्रलेखा के लिए ईश्वरीय था । उसने अपने पति से प्रेम किया था, उस प्रेम में पवित्रता थी, पति के प्रति निःसीम भक्ति थीं । पति से प्रेम में चित्रलेखा ने अपने अस्तित्व को पति के अस्तित्व में भिला दिया था, नहीं उसने अपना अस्तित्व ही मिटा दिया था । वह हँसती थीं; पति को प्रसन्न करने के लिए, वह बोलती थीं पति को प्रसन्न करने के लिए; यहाँ तक कि वह स्थित थीं केवल अपने पति के लिए । उसके जीवन का प्रत्येक पल उसके पति को समर्पित था, पति उसका विश्व था, परमेश्वर था, और अस्तित्व था, और पति के प्रेम में उसे कितना सुख था ! पति से प्रेम उसके आत्मवलिदान की पराकाष्ठा थीं और आत्म-वलिदान में कितना सुख होता है यह आत्मवलिदान करने वाला ही जानता है ।

पति की मृत्यु के बाद उसका संसार अन्धकारमय हो गया । उसने अनुभव हुआ कि उसकी साधना तथा तपस्या ये सब व्यर्य गये । उसने कभी-कभी आत्महत्या की बात भी सोचीं पर आत्महत्या महान पाप है, वह यह जानती थीं; उसे बताया गया था कि तपस्या जीवन का प्रधान अंग है और विधवा का कर्तव्य है संयमयुक्त साधना, चित्रलेखा ने यह भी किया, पर यह उसके लिए कठिन था । जिस समय तक पति जीवित था वह पूजा कर सकती थीं, तपस्या कर सकती थीं और साधना में रत रह सकती थीं क्योंकि इन सब का एक केन्द्र स्थित था—एक आधार उसके पास था—केन्द्र के टूट जाने पर तन्मयता विचलित हो गई, विश्वास अपना आधार न पाकर डिग गया ।

इसके बाद उसने कृष्णादित्य से प्रेम किया—इस बार प्रेम दैवी न था, प्राकृतिक था। इस बार प्रेम में भक्ति न थीं केवल आत्मविस्मरण था। इस बार प्रेम में अपना अस्तित्व मिटाना न था वरन् अपने और अपने प्रेमी के अस्तित्व को एक में मिला देना था। कृष्णादित्य से प्रेम में चित्रलेखा ने प्रथम बार पिपासा का अनुभव किया, वह चौंक उठी। पिपासा के महत्त्व को वह न जान पाई थी, पति के प्रेम में तो उसने अपने को मिटा ही दिया था फिर पिपासा कैसी! इस बार चित्रलेखा ने अपनी इच्छाओं का अनुभव किया। अपने उद्गारों के उग्र रूप को देखकर वह पहले तो कुछ डरी फिर उसे सुख हुआ। इस बार उसने अपने में जीवन का अनुभव किया। प्रेम भक्ति नहीं है इसलिए एक और से नहीं होता, प्रेम सम्बन्ध है वह दोनों और से होता है; प्रेम आत्मा के पवित्र सम्बन्ध को कहते हैं। प्रेम में कम्पन होता है; पिपासा होती है, आत्मविस्मरण होता है। वहाँ तृप्ति का कोई स्थान नहीं। प्रेम में आत्म-बलिदान होता है पर वह एक और से नहीं दोनों और से। कृष्णादित्य भी चला गया। इस बार चित्रलेखा ने देखा कि प्रेम अमर नहीं है; एक पवित्र स्मृति प्रतिदिन धुंधली होती हुई मिट भी सकती है।

बीजगुप्त चित्रलेखा के जीवन में आया। इस बार चित्रलेखा ने प्रेम में केवल पिपासा और कभी-कभी आत्मविस्मरण का अनुभव किया, आत्मबलिदान का नहीं। इस बार उसने प्रेम की मादकता को देखा। इस बार प्रेम के साथ उसने ऐश्वर्य तथा भोग-विलास के मनोहर रूप को देखा—चित्रलेखा ने एक नई बात और देखी; जीवन में केवल प्रेम ही नहीं है और न प्रेम जीवन का एकमात्र आधार है। प्रेम के साथ अन्य उद्गार भी होते हैं। उसने यह देखा कि स्वयं प्रेम केवल कुछ दिनों तक के सुख का आधार हो सकता है। उसके सुख को स्थायी बनाने के लिये आत्म-विस्मरण होना आवश्यक है, पर आत्म-विस्मरण प्रकृति से असम्भव है। इसलिये आत्म-विस्मरण को उत्पन्न करने के लिये मदिरा की आवश्यकता होती है।

इसके बाद वह कुमारगिरी की ओर आकर्षित हुई। कुमारगिरि युवा था, सुन्दर था, प्रतिभावान था और...। चित्रलेखा आगे कुछ न सोच सकी—कुमारगिरि की ओर वह बिना अपनी इच्छा के ही आकर्षित हुई। वह यह समझती थीं पर क्या वह अपनी इच्छा को जानती भी थीं?

चित्रलेखा कुमारगिरि से प्रेम करने लग गई, इस बार अपने प्रेम के आधार वीजगुप्त के उपस्थित रहते हुए। इसलिए चित्रलेखा को कुमारगिरि के पास जाने का साहस न हुआ था।

पर मृत्युञ्जय के भवन के उत्सव की बात ने उसे साहस दिया, साहस के साथ उसकी मनुष्यता को धोखा देने का एक बहाना भी दिया। उसने मन में कहा, “वीजगुप्त को सुखी बनाना मेरा कर्तव्य है, उसे मुक्त कर देना ही मेरा महान त्याग होगा और उसके जीवन को सार्वक बनाना होगा। मुझे वीजगुप्त को छोड़ देना ही पड़ेगा, सदा के लिये छोड़ देना पड़ेगा।

उस रात चित्रलेखा सो न सकी। वह इन्हीं बातों पर विचार करती रहीं। प्रातःकाल उसकी आँख लग गई। वह देर से सोकर उठीं। उस समय मध्याह्न हो गया था। उसने दासी से पूछा, “वीजगुप्त के यहाँ से तो कोई समाचार नहीं आया?”

“नहीं।”

चित्रलेखा ने स्नान किया, भोजन करने से उसने इनकार कर दिया। रथ लाये जाने की आज्ञा देकर वह वस्त्रागार में गई, उसने अपने सारे आभूषण उतार दिये, एक केसरिया रंग की रेशमी साड़ी निकालकर उसने पहन ली। अपने केश उसने उस दिन नहीं बांधे। रथ उस समय तक द्वार पर आ गया था।

चित्रलेखा ने वीजगुप्त को एक पत्र लिखा। दासी को उसने आज्ञा दी कि वह संध्या समय तक न लौटे तो वह पत्र वीजगुप्त को दे दिया जाय। इसके बाद उसने घर का भार अपनी एक विश्वस्त दासी पर सौंपा। वह दासी आश्चर्य में थीं। चित्रलेखा ने केवल इतना ही कहा,

“आश्चर्य न कर, सुनयना ! मैं कुछ दिनों के लिये इस वैभव को छोड़ रही हूँ, जब तक मैं न लौटूँ तब तक यहाँ की स्त्रामिनी तुम हो।”

रथ पर बैठकर उसने कुमारगिरि की कुटी को प्रस्थान किया। राजमार्ग पर रथ छोड़कर चित्रलेखा ने रथवान से कहा, “यहाँ ठहरो। यदि दोपहर के अन्दर मैं न लौटूँ तो तुम रथ ले जाना फिर मेरी प्रतीक्षा न करना।”

जिस समय चित्रलेखा कुमारगिरि की कुटी में पहुँचीं कुमारगिरि ध्वनावस्थित बैठे थे। चित्रलेखा वहाँ बैठ गई। प्रायः एक पहर बाद कुमारगिरि ने अपनी समाधि तोड़ी। उन्होंने आँखें खोलीं तो देखा चित्रलेखा सामने बैठीं हुई थीं। चित्रलेखा के नेत्र बन्द थे, वह कुछ सोच रही थी। उसके शरीर पर केवल एक वस्त्र था। कुमारगिरि ने अभी तक चित्रलेखा का उतावला तथा ऐश्वर्योन्मत्त सौन्दर्य ही देखा था, इस बार उसने शांत और तेज से भरी हुई चित्रलेखा को देखा। चित्रलेखा के पीले तथा कृश मुख पर शान्ति की आभा ने उसकी लोलुपता को ढँक दिया था। मन्त्रमुग्ध-सा कुमारगिरि चित्रलेखा की सुन्दरता को निरख रहा था। कुमारगिरि ने धीरे से कहा, “नर्तकी !”

चित्रलेखा ने अपनी आँखें खोल दीं, “गुहरेव की समाधि समाप्त हो गई ?”

“हाँ ! पर नर्तकी चित्रलेखा, तुम किस लिये यहाँ आयी ?”

“गुहरेव से दीक्षा लेने !”

“पर तुम्हें याद होगा कि मैंने तुम्हें दीक्षा देने से इनकार कर दिया था।”

“हाँ, मुझे याद है ! फिर भी चली आई हूँ ! मैंने त्याग किया है आज अपने ऐश्वर्य को मैंने तिलांजलि दे दी है, मैं अपना सर्वस्व त्याग चुकीं हूँ। केवल ममत्व शेष रह गया है, इस ममत्व को मैं आपके सामने ले आई हूँ, उसको मुझसे छुड़वाना आपका कर्तव्य है और धर्म है।”

“नहीं नर्तकी नहीं !” चित्रलेखा की हरिणी की-सी बड़ी-बड़ी आँखों

के आगे वह काँप उठे, वे चिल्ला उठे, "नहीं, नर्तकी ! नहीं, यह असंभव है ! मैं तुम्हें दीक्षा नहीं दे सकता !" उस समय कुमारगिरि अपने को भूल गए, "तुम्हें दीक्षा देने के अर्थ होते हैं गिरना, नीचे गिरना ! कहाँ ? नीचे हों नीचे जहाँ अन्त ही नहीं है ! मैं तुम्हें जानता हूँ और मैं अपने को भी जानता हूँ । तुम्हें ऊपर उठाना कठिन है, स्वयम् नीचे गिरना सरल है !"

कुमारगिरि उठ खड़े हुए, वे उठकर विक्षिप्त की भाँति कुटी में टहलने लगे । चित्रलेखा मूर्ति की भाँति मौन बैठी थीं । कुमारगिरि ने रुककर किर कहा, 'नर्तकी ! सच कहना । मैं तुमसे झूठ नहीं बोला हूँ, कहता हूँ कि सच कहना, तुम यहाँ क्यों आई हो ? क्या वास्तव में तुम ज्ञान प्राप्त करना चाहती हो ? क्या वास्तव में तुम भोग-विलास को तिलांजलि देने आयी हो ? क्या यह सम्भव है ? बोलो ! मौन क्यों हो ?" कुमारगिरि हँस पड़े, "तुम सच नहीं बोलना चाहती, तुम झूठ भी नहीं बोल सकती ! तुम्हारा मौन 'नहीं' का दोतक है !"

चित्रलेखा की निद्रा भग्न हुई । उसने कुमारगिरि की ओर देखा, उसके नेत्र कुमारगिरि के नेत्रों से मिल गये, उसने शांत भाव से उत्तर दिया, "योगी ! अपने विजय और पराजय की अवहेलना करके एक बार तुम मुझसे सच बोले थे, मैं भी तुमसे सच हीं कहूँगी, मैं तुम से प्रेम करने आयी हूँ !"

"मेरा अनुमान किर मिथ्या न था । धन्यवाद ! तुम मुझसे प्रेम करने आयी हो, मुझसे, जिसने कभी किसीं से प्रेम नहीं किया, जो जानता ही नहीं कि प्रेम क्या है । कितनी विचित्र बात है; पर एक बात और पूछूँगा । प्रेम किस प्रकार किया जाता है ? मैंने अभी तक यह समझा था कि मनुष्य में प्रेम की उत्पत्ति स्वयं हो जाती है, यह नहीं जानता था कि प्रेम करने के लिए पहिले मनुष्य कठिबद्ध होता है, किर प्रेम करता है ।" कुमारगिरि हँस रहे थे, पर उनका वह हास कितना शुष्क था, कितना व्यंगात्मक था । चित्रलेखा चौंक पड़ी ।

उसने कहा, “योगी ! मेरे शब्द ठींक न थे—मैं अपने भावों को ठींक शब्दों में व्यक्त न कर सकतीं । मैं तुमसे प्रेम करतीं हूँ । तुम जानते हो—तुम बहुत दिनों से जानते हो ! मैं तुम्हारे पास इसीलिए आई हूँ कि तुम भी मुझसे प्रेम करो । अब तो मैंने सब कुछ तुमसे कह दिया !”

“तुम मुझसे प्रेम करतीं हो—इतना यथेष्ट है । मैंने कभी तुम्हें इसमें नहीं रोका और न इसमें मैं तुम्हें रोक ही सकता था । प्रेम के बदले में प्रेम की आशा करना ठींक हो सकता है, पर उस आशा को सफलीभूत बनाने की चेष्टा करना अनधिकार चेष्टा है ।”

चित्रलेखा का मुख पीला पड़ गया, पर एक क्षण में हीं वह सम्हल गई । उसने गम्भीर, बहुत गम्भीर होकर कहा, “ठींक कहते हो योगी ! इस बार भी मैंने गलत कहा था, मैं यहाँ आई हूँ प्रेम की अतृप्त प्यास को तृप्त करने, मैं यहाँ आई हूँ, जिससे मैं प्रेम करतीं हूँ, उसके चरणों की धूल को नित्य प्रति अपने मस्तक पर चढ़ाने के लिए, मैं यहाँ आई हूँ तुममें अपने को डुवा देने के लिए, सेवा और भक्ति, स्वयम् का विस्मरण और अतृप्त प्यास—ये प्रेम के द्योतक हैं । मैंने यह सत्य, विश्वास और कर्तव्य के आवरण में, अपने विवाह के समय देखा था; पर उन आवरणों के रहते हुए मैं उस सत्य का वास्तविक महत्व न समझ सकी थी, अब फिर इस सत्य को देखा है, इसलिए तुम्हारे पास आई हूँ ।”

इस बार कुमारगिरि गम्भीर हो गये, “क्या वासना को अलग रख कर प्रेम सम्भव हो सकता है ?” उनके मन में यह प्रश्न उठा; उनकी साधना ने और उनके विश्वास ने उत्तर दिया, “नहीं” उनके हृदय ने कहा “मूर्ख ! शुद्ध प्रेम में वासना और तृष्णा का कोई स्थान नहीं !”

कुमारगिरि ने कहा, “कुछ समय दो देवि ! बड़ी कठिन समस्या है !”

चित्रलेखा ने कुमारगिरि के पैर पकड़ लिये, “समय देने का समय नहीं रहा देव ! जो होना या वह हो चुका । मैं बहुत आगे बढ़ आई हूँ—पीछे जाना असम्भव है ! मैं इस कुटी में रहने आई हूँ, यहाँ से जाने के लिए नहीं ।”

इस बात का उत्तर न देकर कुमारगिरि ने कहा, “क्या तुम यहाँ पैदल आई हो ?”

“नहीं रथ पर आई हूँ !”

“रथ कहाँ है ?”

“राजमार्ग पर छोड़ आई थीं, वह चला गया होगा !”

कुमारगिरि ने ऊपर देखा, “हे भगवन् ! इसमें क्या रहस्य छिपा है ? तुम्हारी क्या इच्छा है; जो तुम्हारी इच्छा है, होगी !” इस बार अपने चरणों पर पड़ीं हुई चित्रलेखा को उन्होंने उठाया। “अच्छा देवि ! तो फिर तुम्हें दीक्षा दूँगा। भगवान की इच्छा है कि मैं संसारस्थित वासनाओं से युद्ध करूँ—तो फिर ऐसा हीं हो !” इतना कहकर कुमारगिरि ने विशालदेव को बुलाया।

विशालदेव के आने पर कुमारगिरि ने उससे कहा, विशालदेव ! तुम्हें देवि चित्रलेखा के लिए कुटीं तैयार करनीं पड़ेगी ।”

विशालदेव के मुख पर आश्चर्य के भाव अंकित हो गये। इस रहस्य को वह भलीं भाँति समझता था। उसने चित्रलेखां को अभिवादन करते हुए कहा, “देवि, तुम्हारा स्वागत है !” इस बार उसने कुमारगिरि पर अर्थपूर्ण दृष्टि डाली।

कुमारगिरि विशालदेव की उस दृष्टि का मतलब समझ गये, “तुम्हें आश्चर्य हो रहा है वत्स ! तुम मेरी निर्वलता को एक बार देख चुके हो, इसलिए तुम्हें आश्चर्य होना स्वाभाविक हीं है परं यह यादं रक्खो मनुष्य का कर्तव्य है कमजोरियों पर विजय पाना। आज भगवान ने मुझपर एक सत्य प्रकट किया है, जीवन की उत्कृष्टता वासना से युद्ध करने में है, और मैं यह करने जा रहा हूँ। इसीलिए मैं चित्रलेखा को दीक्षा देने वाला हूँ।”

विशालदेव मुसकराया, “गुरुदेव का क्यन सर्वथा उचित हैं। कुटी आज रात तक तैयार कर देनी होगी !”

विशालदेव की मुसकराहट तथा उसके इस प्रश्न ने कुमारगिरि के सारे शरीर में क्रोध की विद्युति-सी प्रवाहित कर दी, वे काँप उठे। उन्होंने

तनकर कहा, “नहीं कुटी की कोई आवश्यकता नहीं। चित्रलेखा मेरी कुटी में रहेगी! समझे विशालदेव! मेरी निर्बलता पर उपहास करने वाले नवयुवक! याद रखना, मैं तुम्हारा गुरु हूँ और तुमसे ऊँचा हूँ। मैं तुम्हें दिखाऊँगा कि साधना और तपस्या में तपा हुआ व्यक्ति कितना बलवान हो सकता है।”

कुमारगिरि का रुद्ररूप देखकर विशालदेव भयभीत हो गया, वह उनके चरणों पर गिर पड़ा, “गुरुदेव! मेरी धृष्टता क्षमा करें। मैं कुटी बनाने जा रहा हूँ।”

“नहीं!” कुमारगिरि गरज उठे। “अब कुटी की कोई आवश्यकता नहीं। विशालदेव! एक बार मैंने भ्रम में आकर तुम्हारे गुरु की हँसी उड़ाई थी, उसका दण्ड मिल रहा है। तुम्हारे गुरु ने तुमको यहाँ पर पाप का पता लगाने भेजा है, अब तुम्हें अवसर मिला है कि तुम पाप देखो और उसपर विजय पाना भी देखो। तुम जा सकते हो! संध्यावन्दन का समय हो चुका है।”

विशालदेव चला ज्या। कुमारगिरि ने चित्रलेखा से कहा, “देवि! जो कुछ हुआ वह स्वप्न के समान है। मैं उसपर स्वयम् हीं विश्वास नहीं कर सकता। पर फिर भी जो होना था वह हो चुका, कभी-कभी डर लगते लगता है, ऐसा मालूम होने लगता है कि मैं आग से खेलने जा रहा हूँ।”

चित्रलेखा के मुख पर मधुर मुसकराहट नाच उठी, “देव! मुझसे भय मत खाना! अपनी साधना और तपस्या में तुम मुझे कभी भी बाधा-रूप में न पाओगे, इतना विश्वास दिलाती हूँ। मैं तुमसे प्रेम करती हूँ, और प्रेम का अर्थ होता है, निःसीम त्याग। मैं उसी में सुखी होऊँगी जिसमें तुम्हें सुख मिले।”

“तथास्तु”! कुमारगिरि अपने आसन पर बैठ गये। “तुम्हें अपने लिए कुशासन तैयार करना होगा। कुश तुम विशालदेव से माँग सकती हो। मेरी सन्ध्या की समाधि का समय हो गया।” इतना कहकर कुमारगिरि ने अपने नेत्र बन्द कर लिये।

बारहवाँ परिच्छेद

बीजगुप्त ने मृत्युञ्जय का अकारण ही अपमान किया था, उसने यह अनुभव किया। दूसरे दिन प्रातःकाल जब श्वेतांक बीजगुप्त के पास आया, बीजगुप्त ने कहा, “श्वेतांक ! मृत्युञ्जय के भोज में मैंने सम्भवतः कुछ अनुचित बातें कह दी थीं, परन्तु मैं अभी तक नहीं समझ पा रहा हूँ कि मैंने क्या अनुचित कहा। तुम वहाँ पर उपस्थित थे, तुम्हें सब बातें स्मरण होंगी !”

कुछ सोचकर श्वेतांक ने कहा, “स्वामी ने जो कुछ कहा वह उचित ही कहा। रहीं अपमान करने की बात, वहाँ मैं भी इतना समझता हूँ कि बातें इतनी खुलकर हुईं कि आर्यश्रेष्ठ को अपने को अपमानित समझना असम्भव बात नहीं है पर उसकी चिन्ता ही क्या। सत्य सत्य है, एक दूसरे के विरोधी सिद्धान्त हो सकते हैं।”

“नहीं, यहाँ तुम भूलते हो श्वेतांक ! सत्य सत्य है, पर सत्य अप्रिय न होना चाहिए। जो कुछ मैंने कहा वह किसी दूसरे ढंग से प्रिय रूप में कहा जा सकता था।”

बीजगुप्त को मृत्युञ्जय के अपमान का अधिक ध्यान न था, उसे खेद था यशोधरा को अपनी बातों से अकारण ही दुःख पहुँचाने पर। उसकी दृष्टि के आगे यशोधरा का चित्र नाच रहा था। यशोधरा प्रेम करने की प्रतिमा थी—उसका भोलापन, उसकी प्रशान्त तथा सुधासिंचित आँखें—उसका लज्जा और तेज से विभूषित अति सुन्दर मुख-मण्डल, ये सब रह-रहकर बीजगुप्त के सामने नाच उठते थे। पर वह यशोधरा से प्रेम न कर सकता था क्योंकि वह चित्रलेखा से प्रेम करता था। चित्रलेखा की मांदकता यशोधरा में न थी। चित्रलेखा का हृदय यशोधरा में था या नहीं इसका वह निर्णय कर सकता था। चित्रलेखा

उसकी पत्नी न होते हुए भी पत्नी थी, नर्तकी होते हुए भी वह प्रेम कर सकती थीं, धन के वास्ते नहीं धन की चित्रलेखा के पास कमी न थी, केवल प्रेम के वास्ते । उसे वह रात याद हो आई जब चित्रलेखा से प्रथम बार उसका परिचय हुआ था । चित्रलेखा और यशोधरा में कोई समता न थी । चित्रलेखा ऊँची, बहुत ऊँची थी; वह आश्चर्य करने लगा कि वह यशोधरा के विषय में क्यों सोच रहा है । उसने श्वेतांक से कहा, “श्वेतांक ! मेरा कर्तव्य है कि अपने कटु शब्दों के लिए मृत्युञ्जय से क्षमा-प्रार्थना करूँ !”

“जैसीं स्वामी की इच्छा !”

“पर मैं वहाँ नहीं जाना चाहता !” वीजगुप्त यशोधरा को भूलना चाहता था, “मैं एक पत्र देता हूँ उसे मृत्युञ्जय को दे देना !”

“स्वामी की आज्ञा !”

वीजगुप्त ने मृत्युञ्जय को एक पत्र लिखा, और वह पत्र श्वेतांक को दे दिया । श्वेतांक पत्र लेकर मृत्युञ्जय के यहाँ पहुँचा । प्रहरी से उसने पूछा, “आर्यश्रेष्ठ भवन में ही हैं ?”

प्रहरी ने कहा, वे कार्यवश कहीं गये हैं ! क्या काम है ?”

“उनके लिए एक पत्र लाया हूँ ?”

“मुझे पत्र दे दीजिए, मैं उन्हें दे दूँगा !”

“नहीं ! यह पत्र मैं केवल उन्हीं को दे सकता हूँ ।” श्वेतांक किंचित् रुका, “या उनकी पुत्री यशोधरा को !” श्वेतांक के मुख से अचानक ही यह वाक्य निकल पड़ा ।

प्रहरी ने यशोधरा को सूचना दी और उसने श्वेतांक को ‘अतिथि-भवन’ में ले जाकर बिठला दिया । थोड़ी देर बाद यशोधरा ने वहाँ प्रवेश किया । श्वेतांक उसके अभिवादन को उठ खड़ा हुआ । श्वेतांक को देखकर यशोधरा ने बैठते हुए कहा, “कहिये ! किस कारण आपने कष्ट उठाया है ?”

“सामन्त वीजगुप्त ने आपके पिता के नाम एक पत्र दिया है—

उसी के वाहक-रूप में मैं देवि के सन्मुख उपस्थित हूँ ।” श्वेतांक ने बीजगुप्त को स्वामी न कहना उचित समझा ।

“पिता जी आते ही होंगे, आपको सम्भवतः अभी प्रतीक्षा करने में कुछ कष्ट होगा ।” यशोधरा की बड़ी-बड़ी ओंखें श्वेतांक की आँखों से मिलीं पर उनमें संकोच न था । श्वेतांक कह उठा “पाटलिपुत्र की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी देवी की उपस्थिति में वैठने में किसे कष्ट हो सकता है ?”

यशोधरा इस प्रकार की भाषा सुनने की अभ्यस्त न थी, और विशेषतः एक ऐसे व्यक्ति से जिससे उसका केवल कुछ घण्टों, अथवा कुछ क्षणों का परिचय हो । पर फिर भी बात मीठी थी, यशोधरा की आँखें हर्ष-मिश्रित लज्जा से भुक गयीं और उसके कर्पोलों की स्वाभाविक लालिमा दुगुनी हो गयी । श्वेतांक उसका अतिथि था । उसका आदर करना यशोधरा का कर्तव्य था । उसने श्वेतांक से पूछा,—

“आर्य बीजगुप्त को आपने पूर्ण रूप से जान लिया होगा ।”

“हाँ ! संसार के सर्वश्रेष्ठ मनुष्यों में उनकी गणना करने में किसी को कोई आपत्ति न होनी चाहिये ।”

“और नर्तकी चित्रलेखा के विषय में आपका क्या विचार है ?”

“वह बहुत ऊँचे कोटि की स्त्री हैं । मैं तो यहाँ तक कह सकता हूँ कि वह देवी हैं । जिस मनुष्य ने चित्रलेखा को जान लिया उसने सौन्दर्य और सौन्दर्य-जनित कर्तव्य को जान लिया ।”

यशोधरा हँस पड़ी, “मेरी धारणा तो फिर निर्मूल न थी—आर्य का नाम सम्भवतः श्वेतांक है ।”

“देवि का अनुमान सत्य है ।”

“आर्य श्वेतांक ! एक बात और पूछूँगी । वास्तव में आपके गुरु ने पाप का पता लगाने के लिए आपको सामन्त बीजगुप्त के पास भेजा है ? और यदि भेजा है तो, क्या वास्तव में बीजगुप्त का व्यक्तित्व पाप का पता लगाने का उपयुक्त क्षेत्र है ?”

श्वेतांक मुसकराया, “देवि का कहना ठीक है कि मेरे गुरु ने पाप

का पता लगाने के लिए मुझको आर्य बीजगुप्त के पास भेजा है। और रही आर्य बीजगुप्त के व्यक्तित्व से पाप का पता लगाने के उपयुक्त क्षेत्र होने की बात, वहाँ मैं भी बड़े असमंजस में हूँ। मैं यह भी बतला दूँ कि योगी कुमारगिरि के पास मेरा गुरुभाई जो कल उनके साथ भोज में आया था, पाप का पता लगाने के लिए भेजा गया है। यहाँ भी तुम्हें आश्चर्य होगा।”

वास्तव में यशोधरा चौंक पड़ी।

पर आश्चर्य करने की कोई बात नहीं है देवि ! यह आवश्यक नहीं है कि जिनके पास हम भेजे गये हैं वे ही पापी हों। बहुत सम्भव है कि उनके सम्पर्क में आने वाले लोगों में पापी मिलें। दूसरी बात यह है कि पाप है क्या ? उसको कौन जानता है। जिसको मैं पाप समझता हूँ, उसको दूसरा व्यक्ति सम्भवतः पाप न माने और साथ ही बहुत-सी बातें जिनपर हम ध्यान तक नहीं देते बहुतों के लिए पाप हो सकती हैं।”

इस उत्तर से यशोधरा सन्तुष्ट न हो सकी। “आर्य श्वेतांक ! मैं आपकी प्रशंसा करूँगी कि आप मनुष्य के गुणों को ही देखने में विश्वास करते हैं।”

इतने ही में आर्यश्रेष्ठ मृत्युञ्जय ने भवन में प्रवेश किया। श्वेतांक ने उठकर उनका अभिवादन किया, यशोधरा अन्दर चली गयी।

मृत्युञ्जय ने श्वेतांक को बैठने का आदेश करते हुए कहा, “क्या तुम बीजगुप्त के वही सेवक हो जो कल उनके साथ थे ?”

“आर्यश्रेष्ठ का अनुमान ठीक है। स्वामी ने आर्यश्रेष्ठ के नाम एक पत्र दिया है।”

मृत्युञ्जय ने पत्र ले लिया। पत्र पढ़कर उनके मुख पर सन्तोष के भाव व्यक्त हो गये। “सामन्त बीजगुप्त से कह देना कि उनके क्षमा-याचना करने की कोई आवश्यकता नहीं थी, और उनकी ओर मेरी धारणा वैसी ही निर्मल तथा स्वच्छ है जैसी पहिले थी। एक बात और कह देना। यदि

उनको कोई कार्य न हो तो वे सन्ध्या के समय यहाँ चले आवें, और भोजन भी यहीं करें।” कुछ रुककर उन्होंने फिर कहा, “और श्वेतांक, तुम भी बीजगुप्त के साथ आमन्त्रित हो।”

श्वेतांक का मुख प्रसन्नता से खिल गया, “आर्यथ्रेष्ठ की आज्ञा का पालन होगा। यदि स्वामी आवेंगे तो मैं भी अवश्य आऊँगा। यद्यपि विना उनकी आज्ञा के मेरा यहाँ आना कहाँ तक उचित होगा, यह मैं नहीं कह सकता।”

मृत्युञ्जय हँस पड़े, “तुम शान्त, गम्भीर तथा कर्तव्यनिष्ठ नवयुवक हो, मैं तुमसे प्रसन्न हूँ। तुम्हारा वंश, तुम्हारे पिता का नाम और उनका निवास ?”

“मैं सूर्यवंशी हूँ, मेरे पिता का नाम विश्वपति है, तथा उनका निवास कौशल-प्रदेश है।”

“तुम्हारे पिता का नाम विश्वपति है, और उनका निवास कौशल ह ! क्या उन्होंने काशी में शिक्षा पायी थी ?”

“आर्यथ्रेष्ठ ठीक कहते हैं।”

“कितने आश्चर्य की बात है। विश्वपति मेरे गुहभाई हैं। तुम्हारा स्वागत है, तुम मेरे पुत्र के समान हो।”

अपने पिता और मृत्युञ्जय के इस परिचय पर श्वेतांक को कितनी प्रसन्नता हुई, यह नहीं कहा जा सकता। श्वेतांक के हृदय में एक प्रकार की आशा उत्पन्न हो गई। वह सोचने लगा “यशोधरा का मेरे साथ विवाह हो सकना सम्भव है ?”

“असम्भव !” श्वेतांक जानता था। उसके पिता का वैभव नष्ट हो चुका था, और इसीलिए उसके पिता ग्रामीण जीवन व्यतीत कर रहे थे। वह उच्चकुल का था पर इससे क्या ? मृत्युञ्जय उसके पिता से धन में श्रेष्ठ थे, वैभव में श्रेष्ठ थे और अधिक शक्तिशाली थे। विवाह में इन बातों की समता आवश्यक होती है। फिर भी आशा दब न सकी।

श्वेतांक को मौन देखकर मृत्युञ्जय ने कहा, “वत्स श्वेतांक ! मेरे

भवन को तुम अपना ही समझो। मुझे आश्चर्य होता है कि विश्वपति ने तुम्हारे यहाँ होने की सूचना मझे क्यों न दी।”

“मेरे पिता आज-कल वानप्रस्थ जीवन व्यतीत कर रहे हैं—बहुत सम्भव है कि यह कारण रहा हो। अच्छा तो आर्यश्रेष्ठ आज्ञा दें।”

भोजन का समय हो गया था, “मेरे यहाँ इस समय भोजन करने में तो तुम्हें कोई संकोच न होगा?”

श्वेतांक ने मुसकराते हुए कहा, “संकोच की कोई बात नहीं है आर्य-श्रेष्ठ, पर मैं इस समय आर्य वीजगुप्त का सेवक हूँ। बिना उनकी आज्ञा के मैं कोई काम नहीं कर सकता। अच्छा तो अब आप मुझे आज्ञा दें, विलम्ब हो रहा है। आर्य वीजगुप्त मेरी प्रतीक्षा कर रहे होंगे।”

“साधुवाद ! अपने कर्तव्य को तुम भली भाँति समझते हो। मैं तुम पर प्रसन्न हूँ ! तुम जा सकते हो। पर वीजगुप्त से तुम मेरी बात कहना न भूलोगे।”

श्वेतांक लौट आया। वीजगुप्त से उसने मृत्युञ्जय के यहाँ निमंत्रण की बात कही। वीजगुप्त कह उठा, “मुझे निमंत्रण मिला है। पर क्या मेरा वहाँ जाना उचित होगा ?”

इस निमंत्रण पर वीजगुप्त दोपहर भर विचार करता रहा। उसका वहाँ जाना अनुचित क्यों था ? वीजगुप्त के मन में यह प्रश्न उठा। वह यह तो कह सकता था कि उसका वहाँ जाना अनुचित है, पर वह कारण स्वयम् ही न कह सकता था। बहुत तर्क-वितर्क के बाद उसने मृत्युञ्जय के यहाँ जाना निश्चित किया। संध्या के समय उसने श्वेतांक से कहा, “श्वेतांक ! मैं समझता हूँ कि मुझे किसी भद्र पुरुष का निमंत्रण अस्वीकार न करना चाहिए !” उसके मन में यशोधरा को एक बार फिर देखने की, उससे बात-चीत करने की अस्पष्ट भावना चक्कर काट रही थी।

रात्रि के समय वीजगुप्त श्वेतांक के साथ मृत्युञ्जय के यहाँ पहुँचा। आज मृत्युञ्जय के भवन में पिछली रात की-सी चहल-पहल न थी, वहाँ का वायुमण्डल शान्त था। मृत्युञ्जय ने वीजगुप्त का स्वागत किया।

विश्राम-भवन में जाकर वे लोग बैठ गये। यशोधरा वहाँ पहले से ही बैठी हुई उनकी प्रतीक्षा कर रही थी।

“आर्य वीजगुप्त ! उस पत्र की कोई आवश्यकता नहीं थी।” मृत्युञ्जय ने वार्तालाप आरम्भ किया।

“आर्यश्रेष्ठ अपनी भूल को स्वीकार करना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है।”

मृत्युञ्जय हँस पड़े, “तुम्हारा सेवक श्वेतांक मेरे गुरुभाई विश्वपति का पुत्र है, मुझे आज यह विदित हुआ।” इतना कहकर मृत्युञ्जय ने श्वेतांक की ओर देखा।

“किन्तु आर्यश्रेष्ठ ! श्वेतांक मेरा सेवक नहीं, गुरुभाई है।”

“आर्य वीजगुप्त ! आज आपको कुछ विलम्ब हो गया है।”

“हाँ, आज काशी से मेरे कुछ अतिथि आ गये थे।”

इस बार यशोधरा ने कहा, “काशी तो बहुत सुन्दर तथा प्राचीन नगरी है। क्या आप काशी हो आये हैं ?”

वीजगुप्त हँस पड़ा, “मेरे जीवन का सब से सुन्दर काल काशी में ही व्यतीत हुआ है। मेरे गुह महाप्रभु रत्नाम्बर का निवास-स्थान पहले काशी में ही था। देवि यशोधरा, काशी तो यहाँ से निकट है, मैंने सम्पूर्ण उत्तर भारत का पर्यटन किया है।”

“तो फिर आपने हिमालय पर्वत के भी दर्शन किये हैं।”

“हाँ, हिमालय और हिन्दूकुण्ड पर्वतों को भी मैंने देखा है। प्राकृतिक छटा का पूर्ण रूप तो पर्वतों में ही मिलता है।” इस बार वीजगुप्त ने मृत्युञ्जय से कहा, “आर्यश्रेष्ठ कितनी ही आश्चर्यजनक बातें मैंने वहाँ देखी हैं, पर एक घटना को मैं कभी नहीं भूल सका। उसे सुनकर दाँतों तले ऊँगली दबानी पड़ती है।”

यशोधरा ने कौतूहल-वश पूछा, “क्या आप उस घटना को सुना सकते हैं ?”

“अवश्य” वीजगुप्त ने आरम्भ किया, “कोई दस वर्ष की बात

है। उन दिनों मैं विद्यार्थी था। महाप्रभु रत्नाम्बर के साथ मैं देश-यात्रा को निकला। बड़े-बड़े नगर, उपवनों को पार करते हुए हम दोनों गंगा के किनारे चलते-चलते हरद्वार पहुँचे। वहाँ सम्-भूमि समाप्त हो गयी। आकाश पर मस्तक उठाये हुए पर्वत-शिखर हमारे सामने खड़े थे। मैंने महाप्रभु रत्नाम्बर से पूछा, 'अब आगे क्या है?' उन्होंने कहा, 'अज्ञात प्रदेश!' गंगा के तट पर एक व्यक्ति बैठा हुआ था। उसने सम्भवतः महाप्रभु का कथन सुन लिया। उसने कहा, 'क्या कहा? आगे अज्ञात-प्रदेश है? ठीक कहते हो। पर इतना मैं कह देना अपना कर्तव्य समझता हूँ कि वहीं अज्ञात-प्रदेश देवताओं का निवास-स्थान है। इन्हीं पर्वत-प्रदेशों में कैलाश है, इन्हीं पर्वतीय देशों में गंधर्व नृणाय करते हैं, अप्सराएँ कीड़ा किया करती हैं।' उस व्यक्ति की बात सुनकर महाप्रभु के मुख पर अविश्वास की मुसकान झलक उठी, पर अनुभव-रहित युवा की कल्पना अविश्वास को न अपना सकी। मैंने कहा, "बहुत सम्भव है ऐसा हीं हो! महाप्रभु! इन पर्वतों पर चढ़कर उस पर्वत-प्रदेश में चलने में क्या कोई आपत्ति है?" 'नहीं। यदि तुम चलना चाहते हो तो मैं प्रस्तुत हूँ।'

"हम दोनों और आगे बढ़े। उस प्रकृति-सौन्दर्य की हमने कल्पना तक न की थीं। वनों में रंग-विरंगे फूल खिले थे, जिनसे पर्वतीय शीतल-वायु अठखेलियाँ कर रहा था। पक्षीं कलरव गायन कर रहे थे। चारों ओर शान्ति का साम्राज्य था। वहाँ कोलाहल न था, जनरव न था; केवल एक के ऊपर एक उठती हुई पर्वत-मालाएँ थीं। मार्ग में ग्राम पड़ते थे, उनके निवासी गौरवर्ण के थे, उनकी स्त्रियाँ सुन्दरी थीं, वे रंग-विरंगे वस्त्र पहने थीं, वे हँसती थीं और गाती थीं। उनमें लज्जा अथवा संकोच न था। मैं नवयुवक था, मैं उनके सौंदर्य पर मोहित हो गया था। उन स्त्रियों के झुण्ड-के-झुण्ड मधुर गान गाते हुए चलते थे। मैं यद्यपि उनकी भाषा न समझ सकता था, पर यह अनुमान कर सकता था कि उनका मधुर-गान कवित्व-मय है, और उसका विषय

प्रेम है, मेरे मन ने कहा, 'क्या यहीं अप्सराओं का प्रदेश है ?' हम और आगे बढ़े। ग्राम अब दूर-दूर और छोटे-छोटे मिलते थे। शीत अधिक तीव्र हो गया था, और फूल-फल भी कम मिलने लगे। एक प्रातः हमने सामने दूर पर एक सोने का पहाड़ देखा। मैं पागल-सा चिल्ला उठा, 'गुरुदेव ! सामने कुवेर का सुमेर पर्वत है।' महाप्रभु मेरी मूर्खता पर हँसने लगे। 'वह हिमालय है। हिम पर सूर्य की किरणें चमक रहीं हैं, और इसीलिए तुम्हें स्वर्ण का भ्रम हो रहा है।' मैं अपनी मूर्खता पर लज्जित हो गया। हम और ऊपर चढ़े। अब पृथ्वी स्थान-स्थान पर वरफ से ढँकी थीं—हमारा शरीर ठिठुरा जा रहा था। महाप्रभु रत्नाम्बर ने कहा, 'अब लौट चलें।' पर मैंने साहस किया, 'नहीं महाप्रभु !' उस हिम से ढके हुए पर्वत के नीचे तक तो चलें हीं।' आगे बढ़कर हमें एक कुटी मिली। उस कुटी में उस समय केवल एक स्त्री बैठी हुई कुछ सोच रही थी। हम लोगों को देखकर उठ खड़ी हुई। उसने कहा, 'अतिथियों का स्वागत है।' महाप्रभु ने उस स्त्री को बड़े ध्यान से देखा। उन्होंने धीरे से मेरे कान में कहा, 'यह निरापद स्थान नहीं, यहाँ से लौट चलना चाहिए।' स्त्री हँस पड़ी, 'वृद्ध अतिथि का अनुमान सत्य है। पर जब यहाँ तक आए हीं हो तो एक बात तो जान लो, जिसको तुम जीवन भर कभी न भूल सकोगे।' स्त्री की इस बात से महाप्रभु चकित हो गये, पर उसके अनुरोध को ठालना उन्होंने उचित न समझा। थोड़ी दूर चलकर हमने हिम की एक शिला पर एक योगी को बैठे हुए देखा। उसकी जटा उसके पैरों तक आ गई थी, नाखून सिंह के पंजों की भाँति थे। वह एक-टक जिस ओर से हम लोग आ रहे थे उसी ओर देख रहा था। हम लोगों ने जाकर उसे अभिवादन किया। उसने आशीर्वाद देकर हमें अपने पास बिठलाया। 'आज न जाने कितने समय के बाद मैंने किसीं पुरुष को देखा है' उसने एक ठंडी साँस ली। उसके मुख पर करुणा तथा विषाद के भाव व्यक्त थे! महा-

प्रभु ने उससे कहा 'देव ! आप दुखी हैं।' 'हाँ' उसने उत्तर दिया, 'दुखी हूँ और सुखी भी हूँ।' इतना कहकर उसने पीछे की ओर संकेत किया ।

"हम लोगों ने उठकर पीछे देखा, और भय से काँप उठे । पीछे रक्त का एक कुण्ड था जिसमें सीढ़ियाँ लगी हुई थीं । उस कुण्ड से दुर्गन्धि आ रहीं थीं । महाप्रभु ने योगी से पूछा 'आप यह स्थान त्याग क्यों नहीं देते ?' उसने उत्तर दिया, 'त्यागना चाहता हूँ, पर त्याग नहीं सकता । न जाने कितनी बार इस स्थान को छोड़ने की बात सोचता हूँ, पर सब व्यर्थ है । यह स्थान नहीं छूट सकता है—उफ !'

"इसके बाद ज्ञान की बातें होती रहीं । उसने साधना तथा उपासना का महत्त्व हम लोगों को बतलाया । उस योगी का ज्ञान बहुत ऊँचा था, घण्टों उस दुर्गन्धि को सहकर भी हम उसकी ज्ञान की बातें सुनते रहे । उस समय संध्या निकट आ रहीं थीं । एकाएक योगी चिल्ला उठा, 'समय आ गया ।' और वह उठकर तेजी के साथ कुण्ड की ओर भागा । हम लोग भी उसके पीछे दौड़े; केवल कौतूहल-वश । योगी पागल-सा उस कुण्ड में कूद पड़ा । आश्चर्य की बात है कि उस कुण्ड में उस समय रक्त के स्थान में स्वच्छ तथा निर्मल जल था । उसके बे नारकीय जन्तु सुन्दर कमल-दलों में परिणत हो गए थे । हम लोग अबाक् रह गए । साथ ही हमने देखा कि उस कुण्ड में योगी के साथ एक स्त्री भी थी और वह स्त्री वही थी जिसको हमने कुटीं में देखा था । वे दोनों केलि कर रहे थे । स्त्री हँस रही थी, उसने पुकारकर हम लोगों से कहा, 'मूर्खों ! खड़े-खड़े क्या देख रहे हो ? आओ यहाँ स्नान करो और जीवन का सुख भोगो ।' मेरे मन में इच्छा हुई कि स्नान करूँ, और मैं अपने वस्त्र उतारने लगा । पर महाप्रभु ने मेरा हाथ पकड़कर जोर से खींचा । न जाने उनमें कितना बल था कि लाख विरोध करने पर भी मैं अपने को मुक्त न कर सका । वे मुझे खींचकर ले चले । उस समय वे चल न रहे थे, दौड़ रहे थे । कुटी को

पार करते हुए हम लोग पुराने मार्ग से लौट आए। महाप्रभु ने मुझसे बाद में कहा, 'वत्स ! परमेश्वर को धन्यवाद दो कि हम लोग वच आए।' उस दिन से कई वर्ष तक मेरे सामने उस स्त्री का चित्र नाचता रहा।"

यशोधरा ने पूछा, "इसका रहस्य भी क्या कभी महाप्रभु ने आपको बतलाया ?"

"नहीं ! महाप्रभु ने केवल इतना ही कहा, 'संसार में कई ऐसी बातें हैं जो नहीं समझ में आ सकतीं। उनमें एक वह भी थी।'

इसके बाद सब लोग भोजन-गृह में गये। आज यशोधरा के एक ओर बीजगुप्त और दूसरी ओर श्वेतांक था। भोजन करते हुए यशोधरा ने बीजगुप्त से कहा, 'आर्य, आपकी कहानी अपूर्व है। उसको सुनकर मेरे हृदय में न जाने कैसी हलचल मच गयी। मैं भी चाहती हूँ कि मैं ऐसी आश्चर्य-जनक चीज देख पाती ।'

बीजगुप्त ने हँसते हुए कहा, "देवि ! मनुष्य अनुभव प्राप्त नहीं करता, परिस्थितियाँ मनुष्य को अनुभव प्राप्त कराती हैं।"

श्वेतांक यशोधरा से वात करने का अवसर ढूँढ रहा था। "देवि, अनुभव प्राप्त करने के लिए अभी समस्त जीवन पड़ा है।"

यशोधरा के मुख पर एक विचित्र प्रकार का भाव अंकित था। "संभवतः ! पर किसी भी इस छोटे-से-जीवन का प्रत्येक क्षण कितना मूल्यवान है। इस जीवन के इन क्षणों का व्यर्थ जाना क्या बुरा नहीं है ?"

बीजगुप्त हँस पड़ा, "हमारे प्रत्येक कार्य में अदृश्य का हाथ है। उसकी इच्छा ही सब कुछ है। और संसार में इस समय दो मत हैं। एक जीवन को हलचल-मय करता है, दूसरा जीवन को शान्ति का केन्द्र बनाना चाहता है। दोनों ओर के तर्क यथेष्ट सुन्दर हैं, यह निर्णय करना कि कौन सत्य है, बड़ा कठिन कार्य है।"

श्वेतांक यह देख रहा था कि वह यशोधरा पर अपने व्यक्तित्व का

इतना सुन्दर प्रभाव नहीं डाल सकता था जितना वीजगुप्त । उसने एक बार फिर साहस किया । “देवि यशोधरा, मनुष्य को सुखी और संतुष्ट जीवन की आवश्यकता होते हुए भी, उसमें हलचल की पुट होनी ही चाहिये । प्रेम मनुष्य का निर्धारित लक्ष्य है । कम्पन और कम्पन में सुख, प्यास और तृप्ति—प्रेम का क्षेत्र यहीं है । जीवन में प्रेम प्रधान है । जीवन में आवश्यक है एक दूसरे की आत्मा को अच्छी तरह से जान लेना—एक दूसरे से प्रगाढ़ सहानुभूति और एक दूसरे के अस्तित्व को एक कर देना हीं प्रेम है, जीवन का सर्व-सुन्दर लक्ष्य है ।”

यशोधरा ने श्वेतांक को देखा—उसकी आँखें श्वेतांक की आँखों से मिल गयीं । श्वेतांक का सारा शरीर पुलक उठा । कितनी देर तक यशोधरा श्वेतांक को देखती रहीं, यह नहीं कहा जा सकता, पर श्वेतांक के लिए वे थोड़े-से क्षण कितने मादक थे । वीजगुप्त हँस पड़ा, “यहीं जीवन है !” उसने धीरे से कहा ।

यशोधरा की दृष्टि एकाएक श्वेतांक पर से हट गई । उसका मुख पीला न पड़कर लाल हो गया । श्वेतांक ने घबड़ाकर आँखें नीची कर लीं ।

तेरहवाँ परिच्छेद

यशोधरा में आकर्षण भी था—वह आकर्षण कितना सुन्दर, कितना मधुर और कितना जीवन-हीन ! यशोधरा के पास बैठकर मनुष्य पवित्रता को देख सकता था, पवित्रता को अनुभव कर सकता था, और पवित्र हो सकता था। फिर भी वीजगुप्त को सुख न था—उसको प्रसन्नता न थी। यशोधरा के व्यक्तित्व में उसने एक ऐसे वातावरण का अनुभव किया जिसका वह अभ्यस्त न था। यशोधरा की अभेद्य गम्भीरता में जीवन की एक मौन पहली छिरी थीं—उसके स्पष्ट, निश्छल तथा कवित्वहीन वार्तालाप में उस साधना का समावेश था जिसका वीजगुप्त केवल आदर कर सकता था, जिसको अपना नहीं सकता था।

यौवन हलचल चाहता है, पग-पग पर वह कठिनाइयों को ढूँढ़ता है और अपनाता भी है। यौवन अपना अस्तित्व स्पष्ट रखने का पक्षपाती है—अपने व्यक्तित्व को वह कहीं मिटाना नहीं चाहता, वह उसे कहीं पीछे भी नहीं फेंकना चाहता है। साथ हीं यौवन अपने जीवन में केवल उस व्यक्तित्व को चाहता है जो स्पष्ट हो, प्रभावशाली हो। कई भिन्न-भिन्न शक्तियों के संगठित होकर एक हो जाने को ही क्रान्ति कहते हैं। पर वहाँ पर उन शक्तियों का केवल संगठन ही होता है। वे शक्तियाँ पृथक् होती हैं—किसी भी समय उनका पार्थक्य अनुभव किया जा सकता है।

इसीलिए वीजगुप्त के हृदय में यशोधरा की स्मृति एक भय-मिश्रित सुख—एक भ्रम-मिश्रित अनुराग—एक जीवन-हीन प्रेम के रूप में थी।

यशोधरा एक प्रतिमा थी जिसे हृदय-मन्दिर में बिठलाकर पूजा जा सकता था; यशोधरा में नारीत्व की आदर्शवाद से युक्त पवित्रता

थी, यशोधरा धर्म के विश्वास की प्रतिमूर्ति थीं। यशोधरा की आँखों की सुधा में शान्ति थीं, शीतलता थीं। और बीजगुप्त जीवन चाहता था, हलचल चाहता था, अपनी नसों में उष्ण रक्त का मादक प्रवाह चाहता था। इसीलिए बीजगुप्त अपने जीवन में यशोधरा को न चाहता था।

जिसने एक बार मदिरा पीं ली—नहीं, जिसने एक बार मदिरा की मादकता को जान लिया, वह किर मदिरा नहीं छोड़ सकता। बीजगुप्त चित्रलेखा से प्रेम करता था; चित्रलेखा को छोड़ देना उसके लिए असम्भव था।

‘जिस समय बीजगुप्त अपने भवन पहुँचा, उसे चित्रलेखा का पत्र मिला। पत्र सादा था—छोटा था; पर उस छोटे से पत्र में जीवन की एक लम्बी कहानी थी, मनोविज्ञान का एक सम्पूर्ण ग्रन्थ था। पत्र इस प्रकार था—

‘पूज्य !

आज वह करने जा रही हूँ जिसकी कभी आशा तक न की थी। मैंने तुमसे प्रेम किया है—और अब भी करती हूँ। प्रेम में त्याग की आवश्यकता होती है, उसीं त्याग को कर रही हूँ। मैंने तुम्हारे जीवन को निरर्थक बना दिया था—एक योग्य पुरुष को मेरे प्रेम ने कर्तव्य-च्युत कर दिया था। उसका प्रतिकार करने जा रही हूँ। मैंने अब भोग-विलास को तिलाङ्जलि देकर संयम को अपनाना ही उचित समझा—और इसीलिए मैं योगी कुमारगिरि से दीक्षा ले रही हूँ। तुम्हें विवाह करना ही होगा; यदि अपने लिए नहीं तो मेरे अनुरोध से। मेरे रहते हुए तुम अपना विवाह न करोगे, मैं जानती हूँ—इसलिए तुम से अलग होना पड़ रहा है। रही मैं, मैं विधवा थीं; प्रेमवश मैं कर्तव्य-भष्ट हुईं; एक बार फिर अपना कर्तव्य पालन करूँगी—वैधव्य के संयम को पालन करने का प्रयत्न करूँगी।

‘तुम्हारी—चित्रलेखा’

बींजगुप्त ने पत्र पढ़ा—पढ़ते-पढ़ते उसके हाथ काँपने लगे, उसका मुख पीला पड़ गया। उसका हृदय धड़कने लगा। उसने पत्र इत्रेतांक को दे दिया और अपना मुख ढँककर वह अपने शवन-गृह में चला गया।

जिस बात के होने का बींजगुप्त को भय था वह हो ही गयी चित्रलेखा और कुमारगिरि ! कितना विचित्र योग था ! बींजगुप्त कह उठा, “यह असम्भव है ! इन दोनों का अधिक दिनों तक साथ रहना—यह असम्भव है !”

पर इससे होता क्या था ? सम्भव अथवा असम्भव—बींजगुप्त को इससे क्या प्रयोजन था ? बींजगुप्त के सामने यह प्रश्न था कि चित्रलेखा कुमारगिरि की ओर क्यों आकर्षित हुई ? क्या प्रेम इसी को कहते हैं ? क्या आत्मा का सम्बन्ध भी अस्थायी होता है ? क्या चित्रलेखा का वह वाक्य ठींक था, “आत्मा का सम्बन्ध अनादि नहीं है बींजगुप्त !”

पर यहीं बात कब निश्चित थीं कि चित्रलेखा ने बींजगुप्त से प्रेम करना छोड़ दिया था—पत्र तो यह न कहता था। पत्र कुछ दूसरी ही कथा कहता था; वह कहता था कि चित्रलेखा ने प्रेम के सर्वोच्च आदर्श त्याग तथा आत्म-बलिदान को अपनाया है। चित्रलेखा ने बींजगुप्त को छोड़ा, बींजगुप्त को सुखी बनाने के लिए ! बींजगुप्त का हृदय उसके चित्रलेखा पर अविश्वास को धिक्कारने लगा ! चित्रलेखा देवीं थीं। पर उसने भूल की—भयानक भूल की। बींजगुप्त के जीवन को सुखी न बनाकर उसने जीवन को दुखीं बना दिया था। बींजगुप्त के लिए विवाह करना असम्भव न था—वह केवल एक स्त्री से प्रेम करता था—वह चित्रलेखा थी, और विवाह और प्रेम में गहरा सम्बन्ध है।

बींजगुप्त सो न सका, वह उठा; उस समय अर्ध-रात्रि बीत चुकी थीं, वह अपने भवन के बाहर निकला और वह कुमारगिरि कीं कुटी की ओर पैदल हीं चल दिया।

कुमारगिरि की कुटी में प्रकाश हो रहा था, कुमारगिरि अपने चि० ८

आसन पर ध्यानावस्थित बैठे थे—चित्रलेखा एक कोने में कुशासन पर पड़ीं सो रहीं थीं। बींजगुप्त ने चित्रलेखा को वैभव की चमक में देखा था, शान्ति की छाया में नहीं, इस बार उसने नर्तकी को शान्ति की छाया में देखा। चित्रलेखा के शरीर पर आभूषण न थे—केसर का लेप न था—उतावलापन न था। उसके मुख पर शान्ति की एक मीठी मुसकान शोभित थीं; वह सम्भवतः अपने स्वप्न-लोक में शान्ति की देवी के चरणों पर लेटी हुई थीं। बींजगुप्त चित्रलेखा के सिरहाने बैठ गया। वह एकटक चित्रलेखा को देखने लगा।

श्रात हो गया, कुमारगिरि ने समाधि तोड़ी और चित्रलेखा ने अपने नेत्र खोले। दोनों ने एक साथ हीं बींजगुप्त को देखा और दोनों एक साथ कह उठे, “अरे बींजगुप्त !”

कुमारगिरि के मुख पर आश्चर्य था।

चित्रलेखा के मुख पर भय था।

बींजगुप्त ने कुमारगिरि को प्रणाम किया—उसने चित्रलेखा को भी प्रणाम किया। कुमारगिरि ने आशीर्वाद दिया, चित्रलेखा ने अपने नेत्र बन्द कर लिये।

बींजगुप्त ने धीरे से कहा, “चित्रलेखा !”

“बींजगुप्त !”

बींजगुप्त बहुत कुछ कहने आया था—पर वह सब कुछ भूल गया। बहुत साहस करके उसने कहा, “क्या तुमने निर्णय कर लिया ?”

चित्रलेखा का मस्तक अपराधिनी की भाँति झुक गया—उसके नेत्र से दो आँसू गिर पड़े, उसने धीरे से कहा, “बींजगुप्त ! तुम जो कुछ देख रहे हो यहीं मेरा अन्तिम निर्णय है।”

“पर इस निर्णय पर फिर से विचार करने का तुमको अधिकार आप्त है—निर्णय करने के पहले क्या तुम्हें मुझसे पूछना आवश्यक न था ? क्या तुमने मुझको अपने जीवन से इतना पृथक् समझा कि तुमने मुझसे अपने हृदय की बात बतलाने की आवश्यकता नहीं प्रतीत

की? चित्रलेखा! प्रेम एक दूसरे के भेद-भाव को नहीं देखता; प्रेम दो हृदयों की अभिन्नता का द्योतक है। तुम समझती हो कि तुम अपने इस निर्णय से मुझे विवाह के लिए वाध्य कर सकोगी; पर तुम्हारी धारणा गलत है। तुम अपने इस निर्णय से मुझे सुखी न बना सकोगी—इतना विश्वास रखना; मैंने अपने जीवन में केवल तुम से प्रेम किया है, और साय हीं तुम्हारे सिवा में किसी से प्रेम नहीं कर सकता। मेरा विवाह असम्भव है!"

चित्रलेखा बीजगुप्त के चरणों पर गिर पड़ी; एक बार उसकी इच्छा हुई कि वह उठ खड़ी हो और बीजगुप्त के साथ चल दे, पर एकाएक वह रुक गयी। वह बहुत दूर चली आयी थी, उसका पीछे जाना असम्भव था। बीजगुप्त के चरणों पर वह सिसक-सिसककर रोने लगी—बीजगुप्त ने उसे उठा लिया। शान्त होकर चित्रलेखा ने कहा, "बीजगुप्त! तुम पूज्य हो; तुम मनुष्य नहीं हो, देवता हो। मैं तुम्हें जानती हूँ, पर साथ ही मैं यह भी जानती हूँ कि मैंने तुम से प्रेम करके तुम्हारे जीवन को निरर्थक बना दिया है। बीजगुप्त, तुम्हारा विवाह होना हीं चाहिये—तुम मुझ से प्रेम करते हो, मुझे सुखी बनाना तुम्हारा कर्तव्य है। मुझे तब तक सुख न होगा जब तक मैं तुम्हें विवाहित न देखूँगी और तुम्हारी सन्तान से माता न कहलाऊँगी। तुम विवाह कर लो और यह याद रखना बीजगुप्त कि मैं तुम से सदा प्रेम करती रहूँगी। क्या प्रेम का प्रधान अंग भोग-विलास हीं है, क्या विना भोग-विलास के प्रेम असम्भव है? मैं तुमसे इस समय केवल शारीरिक सम्बन्ध तोड़ रहीं हूँ; इसकी अपेक्षा हमारा आत्मिक सम्बन्ध और दृढ़ हो जायगा!"

बीजगुप्त ने केवल इतना हीं कहा, "चित्रलेखा! फिर सोच लो! तुम मुझसे जो कुछ करने को कह रही हो वह असम्भव है!"

चित्रलेखा ने बीजगुप्त के गले में हाथ डालते हुए कहा, "बीज-गुप्त! कुछ दिनों तक हम दोनों अलग रहकर देखें; शायद तुम कुछ

दिनों के बाद विवाह करने को प्रस्तुत हो जाओ। क्या प्रेम में वियोग नहीं होता ? उस वियोग को ही हम थोड़ा-सा सहन करें !”

बीजगुप्त उठ खड़ा हुआ। “जो कुछ कहना था वह कह चुका, मानना और न मानना तुमपर निर्भर है। जैसा तुम चाहती हो वैसा ही सही, पर थोड़े दिनों के बाद ही तुमको यह स्पष्ट हो जायगा कि तुम गलतीं कर रहीं हो !” इतना कहकर वह वहाँ से चल दिया। चित्रलेखा उसके साथ उसे राजमार्ग तक पहुँचाने के लिये हो ली। राजमार्ग पर वह रुकीं उसने बीजगुप्त का चुम्बन लिया। बीजगुप्त ने उस चुम्बन में इतनी मादकता देखीं, इतना गहन प्रेम देखा जितना कई वर्षों से उसने अनुभव न किया था। विदा देते हुए चित्रलेखा ने बीजगुप्त का चरण पकड़कर कहा, “बीजगुप्त ! सम्भवतः मैं अनुचित कर रही हूँ—उसके लिए क्षमा करना !”

बीजगुप्त को विदा करके चित्रलेखा कुटी में लौट आयीं, उस समय कुमारगिरि कुछ सोच रहे थे। चित्रलेखा को उन्होंने आसन पर बैठने का आदेश देते हुए पूछा, “चित्रलेखा ! तुमने मुझसे कहा था कि तुम मुझसे प्रेम करतीं हो ! क्या यह ठीक था ?”

चित्रलेखा ने आश्चर्यान्वित होकर पूछा, “हाँ ! पर उससे क्या !”

“और तुमने अभीं बीजगुप्त से कहा कि तुम उससे प्रेम करती हो, और बराबर प्रेम करतीं रहोगीं !”

“हाँ—यह भीं ठीक है !”

“पर क्या तुम्हारा दो व्यक्तियों से एक साथ प्रेम करना सम्भव है ?” कुमारगिरि के प्रशान्त मुख-मण्डल पर अविश्वास की एक हल्की छाप थी।

“क्या आप समझते हैं कि यह असम्भव है ? गुरुदेव, पुरुष दो विवाह कर सकता है, और वह दोनों पत्नियों से प्रेम कर सकता है; फिर स्त्रीं क्यों ऐसा नहीं कर सकतीं। स्त्री अपने पति से उतना ही प्रेम कर सकतीं है जितना अपने पुत्र से। आत्मिक सम्बन्ध कई व्यक्तियों से एक साथ सम्भव है !”

“चित्रलेखा ! या तुम मुझे धोखा देना चाहती हो, या वीजगुप्त को, और या अपने ही को ।”

“मैं आपको धोखा नहीं दे रही हूँ—इतना विश्वास रखिये गुरुदेव ! बहुत सम्भव है कि मैं वीजगुप्त को धोखा दे रही हूँ या अपने ही को ।”

“नहीं चित्रलेखा ! एक बार फिर अच्छी तरह से सोच लो । मेरे साथ रहकर तुम वीजगुप्त से प्रेम न कर सकोगी, इतना निश्चय समझो, मेरे साथ रहकर तुम्हें संसार के ऊपर उठना पड़ेगा । मेरे पास तपस्या और साधना का शुष्क क्षेत्र है; हृदय की दुर्वलता का यहाँ काम नहीं है । मैं तुमको समय देता हूँ कि तुम एक बार फिर सोच लो ।”

“सोच लिया है गुरुदेव, अच्छी तरह से सोच लिया है । मैं जैसा तुम कहोगे वैसा हीं कहूँगी; तुम्हारे कहने से मैं ममत्व तक को छोड़ने को तैयार हूँ, रांसार तो फिर भी सरल है ।”

कुमारगिरि चित्रलेखा को समझ न सके । चित्रलेखा में एक असाधारण व्यक्तित्व था, और वह व्यक्तित्व नितना प्रभावशाली था ! कुमारगिरि के हृदय में एक बार फिर यह विचार आया कि वे चित्रलेखा को दीक्षा देने से इंकार कर दें; उन्होंने चित्रलेखा से कहना आरम्भ कर दिया, “देवि चित्रलेखा ! मैं तुम्हें समझने में असमर्थ हूँ; तुम्हारा व्यक्तित्व मेरे व्यक्तित्व से नीचा नहीं है, इसलिए तुम्हें दीक्षा देना मुझे कहाँ तक उचित होगा इसका निर्णय करना होगा; जब तक मैं इसका निर्णय न कर लूँ...” कुमारगिरि का वाक्य पूरा न हो पाया था कि विशालदेव ने कुटी में प्रवेश किया । विशालदेव को देखकर कुमारगिरि रुक गये । अपना वाक्य वे पूरा न कर सके । विशालदेव ने कुमारगिरि के चरण छुए, इसके बाद उसने चित्रलेखा को अभिवादन किया । विशालदेव इसके बाद चला गया ।

विशालदेव के जाने के बाद कुमारगिरि हँस पड़े, “भगवान का यही आदेश मालूम होता है कि मैं तुम्हें दीक्षा दूँ तुम्हें अपने साथ रखूँ और अपनी परीक्षा दूँ । नर्तकी, अभी मैंने जो कुछ कहा उसपर ध्यान न देना ।”

चौदहवाँ परिच्छेद

दिन के बाद रात, और रात के बाद दिन ।

सुख के बाद दुःख, और दुःख के बाद सुख ।

विना रात के दिन का कोई महत्व नहीं है, और विना दिन के रात्रि का कोई महत्व नहीं; विना दुःख के सुख का कोई मूल्य नहीं है, और विना सुख के दुःख का कोई मूल्य नहीं है ।

यहीं परिवर्तन का नियम है । संसार परिवर्तनशील है, मनुष्य उसी संसार का एक भाग है । वींजगुप्त मनुष्य था—उसने सुख देखा था, उसके लिए दुःख को भी जानना आवश्यक था । पर वींजगुप्त अपने दुःख के भार से विचलित हो उठा । जिस बात की उसने कल्पना तक न की थी, वहीं हो गयीं । उसे आश्चर्य यह था कि वह जीवित क्यों है । वींजगुप्त के लिए उसका जीवन भार हो गया ।

फिर भी मनुष्य सुख और दुःख सहने के लिए बनाया गया है; किसी एक से मुख मोड़ लेना कायरता है, वींजगुप्त इसका अनुभव करता था । चित्रलेखा के वियोग के दुःख को उसने साहस पूर्वक सहन करना ही निश्चित किया ।

एक बाधा थी । पाटलिपुत्र में रहते हुए उसको चित्रलेखा से मिलने का अवसर मिल सकेगा; फिर वियोग की तपस्या का मूल्य ही क्या ?

इससे भी बड़ी एक दूसरी बात थी । अन्य सामन्त-गणों को जब यह मालूम हो जायगा कि चित्रलेखा वींजगुप्त को छोड़कर साधना में तर हो गयीं हैं तो वह उनको किस प्रकार मुख दिखला सकेगा ?

तीसरी बात बहुत अस्पष्ट थी । क्या यशोधरा उसके प्रेम को प्रभावित कर सकती है ?

बीजगुप्त दोपहर भर इस समस्या को सुलझाने का प्रयत्न करता रहा। पर वात जितनी ही सुलझाई जाती थी उतनी ही उलझती चली जाती थी। अन्त में वह ऊब उठा उस बात पर अधिक सोचने से उसके हृदय में एक दुःसह पीड़ा होने लगती है। संध्या के समय उसने श्वेतांक से कहा, “श्वेतांक ! मेरा एक प्रस्ताव है।”

“वह क्या ?”

“हम लोग काशी चलें—कुछ दिनों तक देश-पर्यटन करने की मेरी इच्छा है।”

“इतनी जल्दी !” श्वेतांक ने आश्चर्य से पूछा। यशोधरा से अपने बढ़ते हुए प्रेम को वह पुष्ट करना चाहता है, और इसके लिए श्वेतांक को पाटलिपुत्र में रहना आवश्यक था, “दस-पाच दिन हम लोग क्या अभी नहीं ठहर सकते ! प्रबन्ध करने को बहुत कम समय है।”

बीजगुप्त ने शुष्क भाव से उत्तर दिया, “नहीं, परसों ही चलना पड़ेगा, प्रबन्ध तो क्षणों में होगा। मेरी तथा अपनी यात्रा का प्रबन्ध करना पड़ेगा।”

“जैसी स्वामी की आज्ञा !”

श्वेतांक रात भर जागता रहा। बीजगुप्त का यह निर्णय उसे अच्छा न लगा, पर वह कर ही क्या सकता था। उसने सोचा कि वह बीजगुप्त के साथ चलने से इनकार कर दे, पर इसका उसे साहस न पड़ा, इनकार करना उसकी नीचता होगी उसका हृदय यह कहता था। प्रातःकाल उठकर उसने बीजगुप्त से कहा, “आर्य, आपकी आज्ञा चाहता हूँ कि मैं आर्य मृत्युञ्जय से मिल आऊँ।”

कारण जानते हुए भी बीजगुप्त ने कहा, “क्यों ?”

“बाहर जा रहा हूँ, अधिक दिनों तक बाहर रहने की सम्भावना है। उनसे विदा माँगने जा रहा हूँ।”

“तुम जा सकते हो !” बीजगुप्त मन-ही-मन मुसकराया, एक प्रेम करने पर पछता रहा था, दूसरा प्रेम करने को उत्सुक था।

श्वेतांक मृत्युञ्जय के यहाँ पहुँचा । मृत्युञ्जय बाहर गये हुए थे; श्वेतांक ने यशोधरा को अपने आने की सूचना दिलवायी ।

विश्राम-भवन में यशोधरा श्वेतांक से मिली । अभिवादन करके दोनों बैठ गये और थोड़ी देर तक दोनों मौन बैठे रहे । श्वेतांक ने आरम्भ किया, “देवि ! कल आर्य वीजगुप्त के साथ मैं पाटलिपुत्र छोड़ रहा हूँ । इसीलिए आज तुम लोगों से विदा माँगने आया हूँ । सम्भवतः अधिक दिनों तक बाहर रहना पड़े ।”

श्वेतांक यशोधरा के मुख को देख रहा था, पर यशोधरा के मुख पर कोई भाव-परिवर्तन न हुआ, “क्या वीजगुप्त बाहर जा रहे हैं पर कल तो आर्य वीजगुप्त ने हम लोगों से अपने पाटलिपुत्र से जाने की कोई बाज़ नहीं कही थी !”

श्वेतांक को यशोधरा की अपनी ओर यह उदासीनता बुरी लगी— वह तिलमिला उठा, “हाँ देवि ! चित्रलेखा ने आर्य वीजगुप्त का साथ छोड़कर योगी कुमारगिरि की दीक्षा ले ली !”

इस बार यशोधरा चौंक उठी, “क्या कहा ? चित्रलेखा ने विराग ग्रहण कर लिया है ? वडे आश्चर्य की बात है । हाँ आर्य वीजगुप्त को इससे अवश्य दुःख हुआ होगा ।” यशोधरा ने कुछ देर तक मौन रह कर फिर कहा, “मैं चित्रलेखा से मिलते ही जान गई थी कि वह देवी है, आर्य वीजगुप्त के लिए वह सब से बड़ा त्याग कर सकती है ।”

श्वेतांक अपने प्रहार से स्वयम् ही धायल हुआ, उसकी प्रतिहिंसा भड़क उठी, “और आर्य वीजगुप्त चित्रलेखा को छोड़कर दूसरी स्त्री से प्रेम नहीं कर सकते, मैं उन्हें जानता हूँ । इसलिए अपना हृदय बहलाने वे बाहर जा रहे हैं । उनका दुख इतना प्रबल है कि यदि वे बाहर न जाकर पाटलिपुत्र में रहेंगे तो बहुत सम्भव है वे आत्म-हत्या कर लें ।”

इस बार यशोधरा का मुख पीला पड़ गया, “ठीक कहते हो श्वेतांक ! आर्य वीजगुप्त को मैं भी कुछ कुछ समझ सकी हूँ, और

मैं तुम्हारी बात में सार देखती हूँ। जितने उच्चकोटि के मनुष्य आर्य वीजगुप्त हैं, उसको देखते हुए मैं उनको दोष नहीं दे सकती। इस बात से उनपर मेरी श्रद्धा और बढ़ गयी।”

श्वेतांक क्रोध से पागल हो गया, “यशोधरा! एक नर्तकी के प्रेम में इतना पागल हो जाना आर्य वीजगुप्त के लिए या किसी अन्य पुरुष के लिए कहाँ तक उचित है, यह अभी नहीं जान सका हूँ। दूसरी बात और है। क्या दुःख पड़ने पर इतना अधीर हो जाना मनुष्य में एक निर्वल व्यक्तित्व का द्योतक नहीं है!”

यशोधरा श्वेतांक के इस अकारण क्रोध का कारण न समझ सकी, उसने गम्भीरता-पूर्वक कहा, “आर्य श्वेतांक! बहुत सम्भव है जो कुछ तुम कहते हो वह उचित हो, मैं तुम्हारी बात का खण्डन नहीं करती, पर इतना अवश्य कहूँगी कि इसमें वीजगुप्त का कोई दोष नहीं है। देवि चित्रलेखा आर्य वीजगुप्त की दृष्टि में और उनके जीवन में नर्तकी न थीं, वे उनकी पत्नी के तुल्य थीं। इतना मैं जानती हूँ, तुम जानते हो और सारा इश्वर जानता है। साथ ही प्रत्येक व्यक्ति में कमज़ोरियाँ होती हैं, मनुष्य पूर्ण नहीं है। उन कमज़ोरियों के लिए उस व्यक्ति को बुरा कहना और शत्रु बनना उचित नहीं क्योंकि इस प्रकार एक मनुष्य किसी व्यक्ति का मित्र नहीं हो सकता, संसार के प्रत्येक व्यक्ति को वह बुरा कहेगा और प्रत्येक व्यक्ति उसका शत्रु हो जायगा। फलतः उसका जीवन भार हो जायगा। मनुष्य का कर्तव्य है दूसरे की कमज़ोरियों पर सहानुभूति प्रकृट करना।”

श्वेतांक की विरोध की भावना ने उसका सारा ज्ञान ढैंक लिया था, “सहानुभूति और दया का कर्तव्य में कोई स्थान नहीं। कमज़ोरी की निन्दा करके व्यक्ति से उन कमज़ोरियों को दूर करना उचित होता है।”

यशोधरा हँस पड़ी, “मनुष्य को पहले अपनी कमज़ोरियों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। आर्य श्वेतांक, दूसरों के दोषों को देखना सरल होता है, अपने दोषों को गुग समझना संसार की एक

प्रथा हो गयी है। मनुष्य बही श्रेष्ठ है जो अपनी कमज़ोरियों को जानकर उनके दूर करने का प्रयत्न कर सके।”

यशोधरा का अन्तिम वाक्य श्वेतांक के हृदय में तीर-सा चुभ गया। वह यह निर्णय न कर सका कि यशोधरा ने उसी पर यह व्यंग किया था। पर यशोधरा ने जो कुछ कहा था—वह ठीक था, वह बीज-गुप्त पर लागू होता था क्योंकि बीजगुप्त अपनी कमज़ोरी जानता था और उसको दूर करने का प्रयत्न कर रहा था; वह वाक्य श्वेतांक पर लागू होता था क्योंकि वह दूसरों के दोषों की मीमांसा कर रहा था, प्रतिर्हिंसा के अपने भाव को बुरा न समझता था। उसका मुख पीला पड़ गया, काँपते हुए धीमे स्वर में उसने कहा—“आर्य बीजगुप्त को तुम्हारे सामने बुरा कहना अनुचित था—मैं क्षमा चाहता हूँ, और आगे से मैं अपने दोषों को दूर करने का प्रयत्न करूँगा।”

‘आर्य बीजगुप्त को तुम्हारे सामने बुरा कहना अनुचित था।’ यशोधरा क्रोध से लाल हो गयी। पर एक क्षण में ही उसे श्वेतांक के अकारण क्रोध का कारण मालूम पड़ गया, और दूसरे ही क्षण उसका मुख सफेद हो गया, “आर्य श्वेतांक ! तुम बड़े भ्रम में हो। मैं आर्य बीजगुप्त से प्रेम नहीं करती—तुमसे यह स्पष्ट कह देना ही उचित होगा।” यशोधरा की आँखों में आँसू भर आये—उसने अपना मुख अच्छल में छिपा लिया।

श्वेतांक के मुख से यह वाक्य अचानक ही बिना उसकी इच्छा के निकल पड़ा था, और इसके लिए उसे दुःख था। पर बात मुख से निकल ही गयी, उसको वह लौटा सकता न था। उसने यशोधरा के सामने हाथ जोड़कर कहा, “देवि यशोधरा—मुझे क्षमा करना। मैंने बहुत बड़ा अपराध किया—पर उस समय में अपने आपे में न था। तुम शायद नहीं जानतीं कि मैं इतना कटु क्यों हो गया।”

“क्यों ?” कारण का अनुमान करते हुए भी उसको स्पष्ट रूप से सुनने की लालसा से शायद यशोधरा ने गूछा।

“इसलिए कि मैं तुमसे प्रेम करता हूँ।”

यशोधरा ने श्वेतांक को देखा, उसके निःसंकोच नेत्र श्वेतांक के नेत्रों से मिल गये “बड़े आश्चर्य की बात है आर्य श्वेतांक !”

इस बात ने श्वेतांक को निस्तेज कर दिया। इस वाक्य में कितनी गूढ़ता थी, कितना भयानक सत्य इस छोटे से वावय में छिपा था—यशोधरा श्वेतांक से प्रेम न करती थी। श्वेतांक कह उठा, “मैं जानता हूँ कि तुम मुझसे प्रेम नहीं करती हो देवि, पर मैं तो तुमसे प्रेम करता हूँ। मैं यह तुमसे कहता भी न, क्योंकि प्रेम किया जाता है कहा नहीं जाता है; पर क्या करूँ इस समय प्रसंग ही ऐसा आ गया। अपनी कटुता के लिए और अपने दुःसाहस के लिए मैं तुमसे क्षमा माँगता हूँ !”

यशोधरा उठ खड़ी हुई, “क्षमा-याचना की कोई आवश्यकता नहीं, आर्य श्वेतांक ! मैं तुम्हें दोष नहीं देती। जीवन में ऐसी बातें तो नित्य-प्रति हुआ करती हैं, कहाँ तक क्षमा-याचना करते फिरोगे ? अच्छा, अब मैं जाती हूँ, देखूँ कि पि ता जी आ गये !”

यशोधरा चली गई। श्वेतांक ने अब अनुभव किया कि उसने एक बहुत बड़ी भूल की। वह मिलने आया था यशोधरा से—भग्य-वश यशोधरा से बात-चीत भी एकांत में हो सकी, और काफी अधिक। शायद इससे भी अधिक हो सकती—यदि वह अपनी मूर्खता से यशोधरा को कोधित न कर देता। उसे अपनी मूर्खता पर कोध आ रहा था। उसने सोचा कि अब उसका वहाँ बैठना अनावश्यक है—जिस काम के लिए वह आया था, वह बनने की जगह बिगड़ गया। वह उठा, वह बाहर चलने ही वाला था कि यशोधरा के साथ मृत्युञ्जय ने कमरे में प्रवेश किया। मृत्युञ्जय को देखकर वह रुक गया, और उसने मृत्युञ्जय को अभिवादन किया।

मृत्युञ्जय ने श्वेतांक को बैठने का आदेश देते हुए कहा, “बैठो वत्स श्वेतांक, मैंने सुना है कि तुम आर्य बीजगुप्त के साथ देश-भ्रमण करने जा रहे हो—क्या यह ठीक है ?”

श्वेतांक ने मुसकराने का प्रयास करते हुए उत्तर दिया, “आर्य-
श्रेष्ठ—कल ही हम लोग चले जावेंगे।”

“कहाँ जाने का विचार है ?”

“काशी !”

“और लौटने का कब तक विचार है ?”

“यह नहीं कह सकता—यह तो आर्य बीजगुप्त पर पूर्णतः
निर्भर है।”

यशोधरा ने अपने पिता से कहा, “पिता जी—आप कभी देश-
भ्रमण को क्यों नहीं निकलते ? मैं कभी काशी नहीं गयी, इस अवसर
पर आर्य बीजगुप्त के साथ आप भी काशी हो आवें।”

वात बुरी न थी, और पाटलिपुत्र से काशी निकट भी है ! मृत्युञ्जय
ने कहा,—“पुत्री—इतनी जल्दी कैसे यह सम्भव हो सकता है ?”

“सब कुछ सम्भव है। पिताजी, यदि आप आज्ञा दें, तो चलने का
प्रबन्ध आज संध्या के समय तक हो सकता है !”

मृत्युञ्जय हँस पड़े, “यशोधरा, तुम्हारा यह पहला साग्रह अनुरोध
है, उसे टालना मेरी सामर्थ्य के बाहर है; यदि प्रबन्ध कर सकती हो तो
कर लो, यह देखो मुझे तुम कोई कष्ट न देना।”

श्वेतांक का खिन्न मन और भी खिन्न हो गया। अवश्य ही यशो-
धरा बीजगुप्त से प्रेम करती थी, तभी तो वह इतनी जल्दी काशी चलने
को तैयार हो गयी। पर श्वेतांक ने अपने हृदय को यह समझाकर
शान्त किया कि बीजगुप्त तो यशोधरा से प्रेम नहीं करता है; इतने
दिनों तक साथ रहकर यशोधरा यह समझ जायगी कि कौन व्यक्ति
उससे प्रेम करता है।

यशोधरा ने श्वेतांक से कहा, “आर्य श्वेतांक, हम लोग भी
तुम्हारे साथ चलेंगे—यह याद रखना और आर्य बीजगुप्त से भी
कह देना !”

मृत्युञ्जय ने हिचकिचाते हुए कहा, “यशोधरा ! पहले प्रबन्ध तो

कर लो ! यदि कल तक तुम प्रवन्ध न कर सकीं तो आर्य वीजगुप्त का एक दिन यों ही व्यर्थ जायगा ।”

“प्रवन्ध न कर सकी ? कैसी बात कह रहे हैं पिता जी ! आर्य श्वेतांक, हम लोग अवश्य चलेंगे ।”

श्वेतांक उठ खड़ा हुआ, “तो फिर आज्ञा चाहता हूँ । आर्यश्रेष्ठ ! मैं आर्य वीजगुप्त से यह कह दूँगा ।” इस बार उसने यशोधरा से कहा, “देवि ! यदि प्रवन्ध में कुछ कष्ट हो, तो मैं सेवा करने को प्रस्तुत हूँ—संध्या के समय मैं आ सकता हूँ ।”

यशोधरा हँस पड़ी, “धन्यवाद आर्य ! संध्या समय जब आप आवेंगे, तो यदि कोई कार्य आपके योग्य होगा तो बतलाऊँगी ।”

श्वेतांक चला गया । जाकर उसने वीजगुप्त से कहा, “स्वामी ! आर्यश्रेष्ठ मत्युञ्जय अपनी कन्या के साथ कल काशी की यात्रा करना चाहते हैं, उन्होंने आप से कहलाया है कि यदि यात्रा साथ हो तो अच्छा हो ।”

वीजगुप्त इस प्रस्ताव के लिए तैयार न था, जिन कारणों से वह देश-यात्रा करना चाहता था, उनमें से एक तो उसके साथ ही चल रहा था । पर अब हो ही क्या सकता था—वीजगुप्त ने अनमने भाव से उत्तर दिया, “अच्छी बात है ।”

पन्द्रहवाँ परिच्छेद

यशोधरा ने अपना कथन पूरा किया। उसने अपने चलने का प्रबन्ध कर लिया। दूसरे दिन सब लोगों ने काशी को प्रस्थान कर दिया।

उस समय सन्ध्या हो गयी थी। ग्रीष्म-ऋतु की रात सुहावनी होती है, पर बीजगुप्त के लिये वह रात सुहावनी न थी। चतुर्दशी का चौद पूर्व दिशा की क्षितिज पर जल रहा था, और बीजगुप्त के हृदय में एक ज्वाला जल रही थी। दास और दासियों के भुण्ड-के-भुण्ड मसाल हाथों में लिये हुए साथ थे—मशाल के उन शोलों में बीजगुप्त ने अपने हृदय में जलते हुए शोलों का प्रतिविम्ब देखा। वह मौन था।

बीजगुप्त के रथ पर बीजगुप्त था और श्वेतांक था। मृत्युञ्जय के साथ यशोधरा थी।

आधी रात बीत चुकी थी। चाँदनी छिटक रही थी। मार्ग के समीपवर्ती उद्यानों से बेला और चमेली की भीनी-भीनी सुगन्धि चारों ओर फैल रही थी। श्वेतांक ने निस्तब्धता भंग करते हुए कहा, “क्या रात को विश्राम करना उचित न होगा ?”

बीजगुप्त उस समय कुछ सोच रहा था, क्या सोच रहा था, यह वह स्वयम् ही न जानता था। एक के बाद एक अनेक विचार उसके मस्तिष्क में उठते थे और लोप हो जाते थे। उस मानसिक अवस्था में उसे समय का ज्ञान कुछ भी न हो सका था। उसी समय मृत्युञ्जय का रथ उसके रथ के निकट आ गया, यशोधरा ने कहा, “आर्य बीज-गुप्त ! क्या विश्राम करना उचित होगा ?”

बीजगुप्त चौंक उठा। उसने आकाश की ओर देखा, चन्द्रमा आकाश के पूर्वीय भाग को छोड़कर पश्चमीय भाग की ओर बढ़ गया

था। उसने श्वेतांक से कहा, “श्वेतांक ! रथ रोक दो, और देखो किसी समीपवर्ती बाटिका में ठहरने का कोई प्रबन्ध हो सकता है ?”

रथ रुक गया और बीजगुप्त के रथ रोकने के साथ ही अन्य रथ भी रुक गये। श्वेतांक रथ से उतरकर बाटिका की तलाश में चला गया। बीजगुप्त ने मृत्युञ्जय से कहा, ‘आर्यश्रेष्ठ ! क्षमा कीजिये। मुझे समय का कुछ भी अनुमान न था, आपको कष्ट हुआ होगा। पर अर्ध-रात्रि बीत चुकी है, यदि उचित समझिये तो हम लोग आगे बढ़ते चलें। प्रातःकाल सूर्योदय के समय तक किसी ग्राम में पहुँचकर वहाँ दिन भर विश्राम करें। क्योंकि यहाँ दोपहर की गर्मी से बचने का सम्भवतः प्रबन्ध न हो सकेगा, और इस धूप में प्रातःकाल फिर चलना उचित न होगा !’

मृत्युञ्जय ने कुछ सोचकर कहा, “ठीक कहते हो आर्य बीजगुप्त आगे बढ़े चलना ही उचित होगा।”

थोड़ी देर बाद श्वेतांक लौट आया, उसने कहा, “यहाँ एक बहुत सुन्दर बाटिका है, उसमें एक विशाल भवन भी है। वह बाटिका सामन्त...की भूमि है। ठहरने का बड़ा सुन्दर प्रबन्ध है।”

सामन्त...की बाटिका है ?” मृत्युञ्जय कह उठे, “तो फिर यहाँ के प्रबन्ध में कोई त्रुटि न होगी। आर्य बीजगुप्त में इस बाटिका में ठहर चुका हूँ। सामन्त...का एक सुन्दर प्रासाद भी यहाँ है।”

रथ बाटिका में मोड़ दिये गये। माली ने सामन्तों का स्वागत किया। उद्यान में अतिथियों के पलंग लगा दिये गये। सब लोग थके थे ही, सो गये। पर बीजगुप्त को नींद न आई।

बीजगुप्त कहाँ जा रहा था ? क्यों जा रहा था ? इन प्रश्नों ने उसके मस्तिष्क को चक्कर में डाल रखा था। वह काशी जा रहा था, शान्ति पाने के लिए, अपनी मानसिक पीड़ा को दूर करने के लिए, अपने कर्तव्य से च्युत न होने के लिए। वह पाटलिपुत्र छोड़ आया था, यशोवरा से दूर रहने के लिए, चित्रलेखा से दूर हटने के लिए।

पर यशोधरा से वह दूर न हट सका। यशोधरा उसके और निकट आ गयी, शायद इससे भी निकट एक होते हुए नहीं आवे! 'असम्भव!' वीजगुप्त किंचित जोर से कह उठा। वीजगुप्त यशोधरा से प्रेम न कर सका, उसकी दृष्टि के आगे से यशोधरा हट गयी, चित्रलेखा आई। चित्रलेखा कौन थी; उसके जीवन से चित्रलेखा का क्या सम्बंध था? चित्रलेखा उसकी प्रेमिका थी, पत्नी थी। वह चित्रलेखा से प्रेम करता था और चित्रलेखा उससे प्रेम करती थी। क्या वह अब भी प्रेम करती थी? शायद 'हाँ' शायद 'नहीं'! 'हाँ', इसलिए कि उसने वीजगुप्त को छोड़ा था उसी के हित के लिए, 'हाँ' इसलिए कि उसने कुमार-गिरि के सामने स्वीकृत किया था। 'नहीं' इसलिए कि वह उसे बिना उसकी इच्छा के, उसके जीवन को भार बनाते हुए चली गयी।

यही सोचते सोचते वीजगुप्त को कलरव-गान सुनाई दिया। पूर्व दिशा में प्रकाश की प्रथम रश्मि अपना स्वर्णच्चल फैलाये हुए प्रातः बालीन पवन से अठखेलियाँ कर रही थीं और तारे पीले पड़कर एक के बाद एक अपना अस्तित्व मिटाते चले जा रहे थे। उसने देखा कि उससे थोड़ी दूर पर यशोधरा खड़ी हुई बेले की अधर्खिली कली पर से हिमजल के साथ खेल रही है। वीजगुप्त उठ खड़ा हुआ। नित्यकर्म से निवृत्त होकर वह भी बाटिका में सुगन्धित तथा शीतल समीर से अपने तप्त हृदय को शान्त करने आया। यशोधरा के हाथ में फूल थे, उसने वीजगुप्त को बुलाया, "आर्य वीजगुप्त देखो—प्रकृति के इस सुन्दर रूप को तो देखो! यहाँ कितना उल्लास है, कितनी शान्ति है और कितना सौन्दर्य है। सारे जगत की चिन्ता, उसकी तृष्णा और अभिशाप से भरी हलचल से दूर, अति दूर यहाँ पर निष्कलंक जीवन तितलियों के रंगीन परों के साथ अठखेलियाँ कर रहा है।"

बीजगुप्त पास आ गया। वह यशोधरा के पाश्व में खड़ा हो गया। उसने एक बार अपने चारों ओर देखा, "देवि यशोधरा, मुझे तो प्रकृति में कोई सुन्दरता नहीं दिखलाई देती।"

“प्रकृति में आपको कोई सुन्दरता नहीं दिखलाई देती।” यशोधरा ने आश्चर्य-चकित नेत्रों से वीजगुप्त को देखा, “आर्य वीजगुप्त, क्या आप सत्य कह रहे हैं, या हँसी कर रहे हैं?”

“हँसी नहीं कर रहा हूँ देवि ! मैं सत्य कह रहा हूँ। तुम कह रही हो कि प्रकृति सुन्दर है, मुझे प्रकृति कुरुप दिखलाई देती है।”

यशोधरा वीजगुप्त की बात मानने को तैयार है न थी, “आर्य वीजगुप्त देखो ! यह दूर्वादिल कितना कोमल है, कितना सुन्दर है ! मेरी तो इच्छा होती है कि मैं यहीं इस दूर्वादिल पर रहौं, यहीं बैठूं और इसी पर विश्राम करूँ।”

वीजगुप्त मुसकराया, “नहीं यह न करना देवि ! यहाँ पास कोई वैद्य भी नहीं है, जिससे उपचार कराया जा सके। तुम कहती हो दूर्वादिल कोमल है, सुन्दर है; केवल इसलिए कि तुमने खुले में जीवन नहीं व्यतीत किया। इस दूर्वादिल में कितने कीड़े-मकोड़े हैं इसपर भी कभी ध्यान दिया है ? और दूर्वादिल में नमी है, यदि इसपर तुम अधिक देर तक विश्राम करो तो निश्चय ही तुम्हें शीत हों जायगा। देवि प्रकृति असुविधाजनक है, अपूर्ण है !”

यशोधरा ने नयी बात सुनी पर बात बड़े आकर्षक ढंग से कही गयी थी। तर्क सुन्दर थे, यशोधरा के लिए वे अकाट्य थे। वह कह उठी, “प्रकृति अपूर्ण है ?”

“हाँ, प्रकृति अपूर्ण है ! प्रकृति के अपूर्ण होने के कारण ही मनुष्य ने कृत्रिमता की शरण ली है। दूर्वादिल कोमल है, सुन्दर है, पर उसमें नमी है, उसमें कीड़े-मकोड़े मिलेंगे। इसीलिए मनुष्य ने मखमल के गहे बनवाए हैं जिनमें न नमी है, और न कीड़े मकोड़े हैं, साथ ही जो दूर्वादिल से कहीं अधिक कोमल है। जाड़े के दिनों में प्रकृति के इन सुन्दर स्थानों की कुरुपता देखो, जहाँ कुहरा छाया रहता है, जब इतनी शीतल वायु चलती है कि शरीर कॉपने लगता है। गरमी के दिनों में दोपहर के समय इतनी कड़ी लूँ चलती है कि शरीर झुक्झु

जाता है। प्रकृति की इन असुविधाओं से बचने के लिए ही तो मनुष्य ने भवनों का निर्माण किया है। उन भवनों में मनुष्य उत्तरीय हवा को रोककर जाड़ों में आँगीठी से इतना ताप उत्पन्न कर सकता है कि उसे जाड़ा न लगे, उन भवनों में जवासे तथा खस की टट्टियों को लगा कर मनुष्य गरमी में इतनी शीतलता उत्पन्न कर सकता है कि उसे मधु-मास का-सा सुख मिले। प्रकृति मनुष्य की सुविधा नहीं देखती, इसीलिए वह अपूर्ण है।"

"ये पुष्प कितने कोमल हैं, इसमें कितनी मादक सुगन्धि है। यह कलरव गायन कितना मधुर है। कितना मन को लुध करने वाला संगीत है। कोयल के स्वर में कितनी मिठास है और करुणा है।"

"ये पुष्प कोमल हैं? ठीक है, पर इनमें काँटे भी तो हैं। न जाने कितने छोटे छोटे भुनगे इन फूलों के अन्दर धुसे हुए हैं। रही इनकी कोमलता तथा इनकी सुगन्धि, ये क्षणिक हैं। फिर इनकी सुगन्धि किस काम की? एकान्त में ये अपना सौरभ व्यर्थ गँवा देते हैं। और इस कलरव-गायन में माधुर्य हो सकता है केवल स्वरों का। यह कलरव-गायन, इसमें संयत भाषा न होने के कारण, उस भाव-हीन संगीत की भाँति है जिसमें स्वरों का उतार चढ़ाव नहीं है। इस संगीत में सप्त स्वर एक साथ गूंज उठते हैं। इस कलरव-गायन से कहीं अच्छा मानव कंठ का संगीत होता है। और कोयल में केवल पंचम है जिसको अधिक देर तक सुनने से चित्त ऊब उठता है। कोयल क्या कहती है, यह कोई नहीं जानता। शायद वह कुछ भी नहीं कहती।"

यशोधरा चकित हो गई। उसके भवन में एक उद्यान था जहाँ उसने प्रकृति को देखा था। वह प्रकृति की सुन्दरता पर मुग्ध थी। पर आज बीजगुप्त के तर्कों को सुनकर उसने सोचा कि वह कितने भ्रम में थी। आगे एक कृत्रिम प्रगत था। उस प्रपात से दूर हटकर कपोतों के भुण्ड-के-भुण्ड एक कृत्रिम नहर में नहा रहे थे। यशोधरा उस ओर बढ़ी, बीजगुप्त उसके साथ हो लिया। मंत्रमुग्ध की भाँति यशोधरा

उस सौन्दर्य को निरख रही थी। उसने धीरे से कहा, “ये कपोत कितने सुखी हैं। आपस में किस प्रकार ये खेल रहे हैं, इनमें ईर्ष्या, धृणा, दुष्टता तथा अन्य अवगुण जो मनुष्य में पाये जाते हैं नहीं हैं। जी चाहता है कि मेरे भी पंख होते और मैं भी कपोती होती।”

बालिका की सरलता पर वीजगुप्त हँस पड़ा, “देवि यशोधरा! मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि यदि तुम कपोती होतीं तो मनुष्य बनना चाहतीं। तुम समझती हो कि ये कपोत सुखी हैं, निश्चिन्त हैं, इनके शत्रु नहीं हैं। यह तुम्हारा भ्रम है। अभिलाषा के पूर्ण होने को सुख कहते हैं, अभिलाषा के न पूर्ण होने को दुख कहते हैं। क्या तुम जानती हो कि इन कपोतों की सब अभिलाषाएँ पूर्ण हो जाती हैं? प्रश्न तो यह है कि क्या इनके अभिलाषाएँ होती भी हैं। मनुष्य इन पशुओं तथा पक्षियों से श्रेष्ठ इसलिए है कि उसके अभिलाषा होती है और वह अभिलाषा को पूर्ण करके सुखी होता है। मनुष्य कर्ता है, पैदा होकर अकर्मण्यता का जीवन व्यतीत करके मर जाने के लिए नहीं बनाया गया है, वह बनाया गया है कर्म करने के लिए। पशु और पक्षी भोजन के लिए किस बुरी तरह से भगड़ते हैं! फिर भी यह याद रखना मनुष्य को अपने भोजन के लिए परिश्रम करना पड़ता है—वह हल चलाता है और अन्न उत्पन्न करता है। पर पशु और पक्षी प्रकृति के पदार्थों पर रहते हैं। पृथ्वी के कीड़े मकोड़ों को खाकर पक्षी जीवित रहते हैं—पशुओं में तो एक दूसरे को खा जाते हैं। इन कपोतों के शत्रु बाज जब इनपर भपटते हैं तब इनकी दशा देखो! इन्हें कितनी चिन्ता रहती है? ये कितने विवश हैं।”

यशोधरा आश्चर्य से वीजगुप्त को देख रही थी। वीजगुप्त ने कुछ रुक्कर कहा; “देवि यशोधरा! तुम समझती होगी कि प्राकृतिक वातावरण में रहने वाले मनुष्य सुखी हैं। पर एक बात याद रखना। मनुष्य अपनी स्थिति से कभी सन्तुष्ट नहीं रहता। तुम राजप्रासाद में पली हो, राजप्रासाद में तुम्हें कोई रुचि नहीं, उसकी सुन्दरता तथा

उसकी सार्थकता के प्रति तुम उदासीन हो, उदासीन ही नहीं, कभी-कभी तुम्हारी उस वातावरण को छोड़ने की इच्छा भी होती होगी। तुम इस प्रकृति के निकटस्थ झोंपड़ियों में सुख देखती होगी, तुम ग्रामों की खुली हवा में पशुओं के साथ प्रकृति से क्रीड़ा करने की सुखद कल्पना से वशीभूत हो जाती हो। ठीक है, स्वाभाविक है। पर जरा इन ग्राम-वासियों से तो पूछो—ये लोग यही कहेंगे कि जो सुख है वह महलों में है, दास-दासियों से घिरे रहने में है। फिर हमारे वे प्रपितामह जिन्होंने ये महल बनवाये हैं कभी ग्रामवासी रहे होंगे ही। उन्होंने ग्राम छोड़ कर नगर क्यों बसाये ? इसीलिए कि प्रकृति की कुरुपता को तथा उसकी असुविधाओं को उन्होंने कृत्रिमता से दूर करना उचित समझा। यह बाटिका जिसपर तुम मोहित हो रही हो, स्वयम् कृत्रिम है, यदि प्रकृति देखना चाहती हो तो जंगलों में जाओ जहाँ सिंह अपनी खून की प्यासी जीभ को लिये हुए फिरा करते हैं—जहाँ बड़ी-बड़ी घास में विषधर सर्प अकारण ही लोगों को काटकर मृत्यु के घाट उतारने को प्रस्तुत रहते हैं। इस कृत्रिम नहर को छोड़ो और नदियों को देखो; वहाँ मगर और घड़ियाल मनुष्य का भोजन करने के लिए जल में छिपे हुए ताक लगाये बैठे रहते हैं। तब तुम देखोगी कि सुख और सौन्दर्य प्रकृति में है या कृत्रिमता में है।”

बीजगुप्त अपनी वातें कह रहा था और यशोधरा आश्चर्य से उसके मुख की ओर देख रही थी। अभी तक वह बीजगुप्त को केवल एक चरित्रवान व्यक्ति ही समझती थी, आज उसे मालूम हुआ कि बीजगुप्त में उच्च चरित्र के साथ उच्चकोटि का मस्तिष्क भी है। बीजगुप्त की विद्वता से, उसकी मौलिकता से और उसके तर्कों से वह चकित हो गयी। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि बीजगुप्त के प्रति उसकी श्रद्धा भंकित में परिणत होती जा रही है। उसने कुछ देर तक मौन रहकर कहा, “आर्य बीजगुप्त धृष्टता के लिए क्षमा कीजिएगा, एक प्रश्न है, आपने यह सब कहाँ और कब पढ़ा ?”

प्रश्न वास्तव में अनुचित था, पर बीजगुप्त ने उसपर ध्यान न दिया, “देवि यशोधरा ! संसार की पाठशाला में अनुभव की शिक्षा-प्रणाली से परिस्थितियों ने मुझे यह सब पढ़ाया है। और अब जलपान का समय हो गया है—क्या चलना उचित न होगा ?” इतना कहकर बीजगुप्त भवन की ओर मुड़ा। यशोधरा भी मुड़ी और बीजगुप्त के साथ वह लौटी।

बीजगुप्त प्रसन्न न था, यह उसके मुख से स्पष्ट था। यशोधरा ने पूछा, “आर्य बीजगुप्त ! आज अन्यमनस्क क्यों हैं ? आप दुखी हैं ? इस दुःख का कारण क्या आप बतला सकते हैं ?”

एक ठंडी श्वास लेकर बीजगुप्त ने कहा, “हाँ देवि यशोधरा ! मैं दुखी हूँ, पर मेरे दुख का कारण सुनकर क्या करोगी ? तुम्हारा उस कारण का न जानना ही उचित है।”

“क्या वह कारण गुप्त है ?”

“नहीं ! मेरे जीवन की कोई बात गुप्त नहीं। गुप्त वे बातें रखी जाती हैं जो अनुचित होती हैं, गुप्त रखना भय का द्योतक है, और भयभीत होना मनुष्य के अपराधी होने का द्योतक है। मैं जो करता हूँ उसे उचित समझता हूँ, इसलिये उसे कभी गुप्त नहीं रखता। कारण मैं तुम्हें इसलिए नहीं बतलाना चाहता था कि अपने दुःख से दूसरे को दुखी करना अनुचित है।”

यशोधरा चुप हो गई; उसने अनुभव किया कि वह इस विषय पर बातें छेड़कर बीजगुप्त को और अधिक दुखित बना रही है। इस समय वे दोनों भवन तक पहुँच गये थे। आर्यश्रेष्ठ मृत्युञ्जय तथा श्वेतांक इन लोगों की प्रतीक्षा कर रहे थे; जलपान का प्रबन्ध हो गया था। यशोधरा दौड़कर मृत्युञ्जय के गले से लिपट गयी “पिताजी, आज आर्य बीजगुप्त ने मुझे ऐसी बातें बतलाईं जिनसे मेरी आँखें खुल गयीं। मेरी पुरानी धारणाओं को उन्होंने बिलकुल निर्मूल सावित कर दिया—आर्य बीजगुप्त वहुत बड़े विद्वान् भी हैं—यह मुझे आज मालूम हुआ। उस समय यशोधरा बीजगुप्त की ओर देख रही थी।

यशोधरा ने श्वेतांक की ओर दृष्टि डाली—श्वेतांक का मुख पीला था—ऐसा मालूम होता था कि श्वेतांक पीड़ित है। यशोधरा ने श्वेतांक का हाथ पकड़कर कहा, “आर्य श्वेतांक! क्या तुम अस्वस्थ हो?” इतना कहकर यशोधरा श्वेतांक की नाड़ी की परीक्षा करने लगी। “नहीं! तुम्हें ज्वर तो नहीं है, फिर तुम्हारा मुख इतना पीला क्यों है?”

“श्वेतांक सम्भवतः ठीक तरह से विश्राम न कर सकने के कारण थक गया है।” बीजगुप्त ने कहा “श्वेतांक! तुम दोपहर भर सो लो!”

यशोधरा श्वेतांक का हाथ पकड़े खड़ी थी, और श्वेतांक के मुख का पीलापन धीरे-धीरे लोप होता जा रहा था। उसने कहा, “नहीं, मैं अस्वस्थ नहीं हूँ—थोड़ा थक गया हूँ, विश्राम से ठीक हो जाऊँगा।”

जलपान करने के बाद बीजगुप्त ने श्वेतांक से कहा, “मैं बहुत थका हूँ, इस समय मैं शयन करूँगा। जिस समय भोजन तैयार हो जाय उस समा तुम मुझको जगा लेना। और तुम आर्य मृत्युञ्जय के साथ बैठो—वे ऐसा न समझें कि हम लोग उनकी कोई परवाह नहीं करते।”

मृत्युञ्जय तथा यशोधरा के साथ बैठकर श्वेतांक बातें करता रहा।

यशोधरा ने प्रातःकाल की प्रकृति के विषय की बात-चीत सुनाई, मृत्युञ्जय बीजगुप्त के तर्कों को सुनकर आश्चर्यान्वित हो गये। फिर उन्होंने कहा “श्वेतांक! आर्य बीजगुप्त कुछ अस्वस्थ से दिखलाई देते हैं?”

श्वेतांक के उत्तर देने के पहले ही यशोधरा ने कहा, “हाँ, मेरा भी ऐसा अनुमान है, और आर्य बीजगुप्त से मैंने पूछा भी था। उन्होंने स्वीकार कर लिया कि वे दुःखी हैं; पर जब मैंने कारण पूछा तो उन्होंने कहा कि वे कारण न बतलायेंगे।” इस बार यशोधरा की दृष्टि श्वेतांक की ओर धूम गयी।

मृत्युञ्जय ने कहा, “बहुत सी बातें ऐसी हैं जो गुप्त होती हैं।”

“सम्भवतः—यद्यपि मनुष्य में गुप्त भेदों का होना उसकी दूषित प्रवृत्ति का द्योतक है। मनुष्य अपनी वातें गुप्त इसलिए रखता है कि वह भय खाता है कि कहीं समाज यदि उन वातों को जान जाय तो उसकी समालोचना न करे, या उसको बुरा न कहे। फिर भी मैं इतना कह सकती हूँ कि वीजगुप्त के दुखः का कारण गुप्त नहीं है उन्होंने मुझसे स्वरम् यह कहा था।”

“और शायद यह परिभाषा भी कि मनुष्य में गुप्त भेदों का होना उसकी कठुनित प्रवृत्ति का द्योतक है, आर्य वीजगुप्त की है!” श्वेतांक ने व्यंगात्मक हँसी हँसते हुए कहा।

“नहीं, समर्थ के लिए इसमें गलती नहीं—जो व्यक्ति समाज को ठुकराकर जीवित रह सकता है उसके लिए यह सिद्धान्त सर्वथा उचित है। पर संसार तो समर्थ नहीं है। मुझे ही ले लो; मैं आर्य वीजगुप्त का सेवक हूँ। उनकी आज्ञा ही मेरी इच्छा है—मेरा कर्तव्य है। मुझमें भी व्यक्तित्व है, पर वह व्यक्तित्व किस काम का? मैं परावीन हूँ। कभी विरोध की स्वाभाविक आग मेरे उर को प्रज्वलित कर देती है। उस समय उस विरोध की आग को प्रकट करके कलह उत्पन्न कर लेना उचित होगा या उस आग को दबाकर कर्तव्य-रत हो जाना उचित होगा, इसका उत्तर स्पष्ट है।”

मृत्युञ्जय ने कहा, “वत्स श्वेतांक! तुम्हारा यह विरोध अनुचित है, और इसीलिए उसको गुप्त रखना उचित होगा!”

यशोधरा ने धीरे से कहा, “तुम्हारा यह विरोध उचित है, आर्य श्वेतांक! मुझे तुम्हारी इस अवस्था पर दुःख है।” श्वेतांक ने यशोधरा की आँखों में सहानुभूति-मिश्रित प्रेम की एक आभा देखी।

सोलहवाँ परिच्छेद

कुछ ऐसे व्यक्तित्व होते हैं जो दूसरों को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं, जो दूसरे व्यक्तित्व को आकर्षित करके उसको दबा देते हैं और उसको अपना दास बना लेते हैं। चित्रलेखा का व्यक्तित्व भी ऐसा ही था। यद्यपि चित्रलेखा अपनी इस आकर्षणशक्ति से भली भाँति परिचित न थी, परं अनजाने में ही वह उसका प्रयोग करती थी, और कुमारगिरि अपने को रोक न सका।

कुमारगिरि की कुटी में कुमारगिरि और चित्रलेखा का साथ हुआ। कुमारगिरि चित्रलेखा से दूर हटना चाहता, पर वह सदा अपने को चित्रलेखा के निकट पाता था, इसपर उसे आश्चर्य होता था। चित्रलेखा कुमारगिरि के साथ उसी की कुटी में रहने लगी। जिस समय कुमारगिरि ध्यान लगाकर बैठता था, चित्रलेखा कुटी में आ जाती थी और वह एक गृहिणी की भाँति कुटी का प्रबन्ध करती थी। पर कुमारगिरि ध्यानावस्थित न रह सकता था; उसके नेत्र खुल जाते थे, और वह एक क्षण के लिए चित्रलेखा को देख अवश्य लेता था। दूसरे ही क्षण वह अपनी आँखें फिर-बन्द कर लेता था, वह प्रयत्न करता था कि वह फिर से ध्यानावस्थित हो जाय, पर यह उसके लिए असम्भव था।

और चित्रलेखा ! वह कुमारगिरि की कुटी में गई थी कुमारगिरि से प्रेम करने—पर कुटी में पहुँचकर उसकी भावना बदल गई। वह साधना तथा तपस्या को सीखना चाहती थी—वह कुमारगिरि के मार्ग में बाधा न पहुँचाना चाहती थी।

उस दिन दीपक जल चुका था, और रात्रि दो प्रहर बीत चुकी थी। कुमारगिरि के ध्यान-मग्न होने का समय आ गया था, वे अपने आसन पर बैठ गये। कुमारगिरि ने नेत्र बन्द किये, पर वे ध्यानमग्न न हो सके। चित्र-

चित्रलेखा ने जब देखा कि कुमारगिरि ध्यानावस्थित हो गये, वह कुठी में आ गई और अपने आसन पर बैठ गई।

चित्रलेखा के पैरों की आहट सुनते ही कुमारगिरि ने नेत्र खोल दिये, धीरे से उन्होंने कहा, “देवि चित्रलेखा ?”

चित्रलेखा चौंक उठी, वह समझे हुए थी कि कुमारगिरि ध्यानावस्थित हो गये हैं, उसने उठते हुए कहा, “क्षमा करना गुरुदेव ! मुझसे भूल हो गई कि मैं आपके ध्यानावस्थित होने के पहले ही चली आयी—मैं जाती हूँ जिससे आपको कोई बाधा न पहुँचे ।”

कुमारगिरि मुसकराये, “जाने की कोई आवश्यकता नहीं, तुम यहीं बैठो । आज अभी समाधि न लगाऊँगा तुमसे कुछ बात-चीत करूँगा ।”

चित्रलेखा बैठ गई ।

“चित्रलेखा ! मैं सोच रहा था कि क्या मनुष्य कर्म-मार्ग तथा धर्म-मार्ग दोनों ही साथ-साथ नहीं अपना सकता ?”

“मैं नहीं समझी ।”

“तुम जब दीक्षा लेने आयी थीं, उस दिन तुमने कहा था कि मुझसे प्रेम करती हो ।”

“हाँ—और मैंने सत्य कहा था ।”

“और प्रेम के क्या अर्थ होते हैं ।”

“प्रेम के अर्थ होते हैं दो आत्माओं के सम्बन्ध को स्थापित करना ।”

कुमारगिरि थोड़ी देर तक मौन रहे, “तो इस परिभाषा के अनुसार प्रेम केवल दो आत्माओं में ही हो सकता है । दो मनुष्यों में ही प्रेम हो सकता है, मनुष्यों और ब्रह्म में प्रेम नहीं हो सकता ?”

“पर आपके मतानुसार आत्मा ब्रह्म का एक भाग है—इसलिए ब्रह्म से भी इस परिभाषा के अनुसार प्रेम हो सकता है”, चित्रलेखा ने उत्तर दिया ।

“आज मैंने एक नई बात सोची है देवि चित्रलेखा ! विराग मनुष्य के लिए असम्भव है क्योंकि विराग नकारात्मक है । विराग का आधार

शून्य है—कुछ नहीं है। ऐसी अवस्था में जब कोई कहता है कि वह विरागी है, गलत कहता है, क्योंकि उस समय वह यह कहना चाहता है कि उसका संसार के प्रति विराग है। पर साथ ही किसी के प्रति उसका अनुराग अवश्य है, और उसके अनुराग का केन्द्र है ब्रह्म। जीवन का कार्यक्रम है रचनात्मक, विनाशात्मक नहीं; मनुष्य का कर्तव्य है अनुराग, विराग नहीं। 'ब्रह्म से अनुराग' के अर्थ होते हैं ब्रह्म से पृथक् वस्तु की उपेक्षा, अथवा उसके प्रति विराग। पर वास्तव में यदि देखा जाय तो विरागी कहलाने वाला व्यक्ति वास्तव में विरागी नहीं, वरन् ईश्वरानुरागी होता है। यह बात अधिक महत्व की नहीं है, दूसरी बात महत्व की है। क्या संसार से विराग और 'ब्रह्म से अनुराग—ये दोनों एक चीज हैं ?'

चित्रलेखा कुमारगिरि की इन बातों को सुनकर घबड़ा गई। वह कुमारगिरि की मनःप्रवृत्ति को जानती थी, वह शायद कुमारगिरि की कमजोरी को भी समझती थी। उसने कहा, देव ! मैं इसका उत्तर देने में असमर्थ हूँ। मैं गुरुदेव से ज्ञान पाने को आयी हूँ—मैं गुरुदेव से जीवन के लक्ष्य को देखने आयी हूँ। ब्रह्म को जानने के लिए आयी हूँ।"

कुमारगिरि का मस्तक झुक गया; उनकी साधना ने उनके अपराधी हृदय को दबा दिया। "ठीक कहती हो देवि चित्रलेखा ! ज्ञान तर्क की चीज नहीं है, अनुभव की चीज है, यह कुतंक मुझमें क्यों उठ पड़ा, मैं स्वयं ही नहीं जानता। पर वास्तव में यह तर्क बड़ा प्रबल हो गया है, इस प्रश्न का उत्तर देना पड़ेगा कि क्या संसार के प्रति उदासीन रहकर ईश्वर से अनुराग किया जा सकता है ! जब तक इस प्रश्न का उत्तर न दे लूंगा तब तक मुझे शान्ति न मिलेगी।"

चित्रलेखा ने अपने को टटोला—उसने अपने में एक विचित्र प्रकार का परिवर्तन पाया। वह पहले चली थी कुमारगिरि से प्रेम करने—उसने अब अनुभव किया कि वह कुमारगिरि से प्रेम न कर सकती थी, न उनकी पूजा कर सकती थी और न उनसे सीख सकती थी। नगर के अशान्तिमय जीवन से वह घबड़ा गई थी; निर्जन का शान्ति में, सात्त्विकता की आभा

में विश्वास के परदे पर उसने सुख देखा, जीवन के आमोद-प्रसोद से वह ऊँच उठी थी, अतिसुख उसके लिए उत्पीड़न हो गया था। कुमारगिरि की कुटी के प्रशान्त वातावरण में चित्रलेखा ने सुख देखा, तृप्ति देखी।

कुमारगिरि कुछ थोड़ी देर तक सोचते रहे। इसके बाद उन्होंने फिर कहा, “देवि चित्रलेखा ! मैं तुम्हें अभी तक नहीं समझ पाया हूँ—पर मेरा हृदय यह कहता है कि हमारा साथ बहुत दिनों का है।”

कुमारगिरि के पास आने के पहले चित्रलेखा ने भी यही सोचा था। “सम्भवतः ! पर गत-जीवन की भावना इतनी अस्पष्ट है कि उसे देख नहीं पाती हूँ।”

कुमारगिरि हँस पड़े, सम्भव है मेरी धारणा गलत हो। पर देवि चित्रलेखा ! एक बात ठीक-ठीक बतलाना। तुममें एक आकर्षण शक्ति है, उस आकर्षण शक्ति^८ को तुमने कहाँ पाया है ?”

चित्रलेखा का मुख लाल हो गया। कई वर्ष बाद उसने प्रथम बार लज्जा का अनुभव किया, उसका मुख झुक गया “गुरुदेव ! मुझमें आकर्षण शक्ति है यह मैं नहीं जानती।”

कुमारगिरि उठ खड़े हुए। उठकर वे टहलने लगे। उन्होंने कहा, “आज समाधि में मन नहीं लगता—निराकार के आधार पर अपने मन को स्थिर रखना आज कितना कठिन मालूम होता है। यह क्यों ?” इस बार कुमारगिरि का स्वर तीव्र हो गया “निराकार की उपासना आज कठिन क्यों मालूम होती है—हृदय कह रहा है ‘साकार ! साकार !’” उस समय तक कुमारगिरि चित्रलेखा के पास आ गये थे, वे रुक गये और उन्होंने अपने नेत्र चित्रलेखा पर गड़ा दिये, “नर्तकी ! मैंने अभी तक निराकार की उपासना की है, अब साकार को अपनाने की इच्छा हो रही है। समझो ! मैं एक प्रयोग करने जा रहा हूँ—उस प्रयोग में तुम्हें मेरी सहायता करनी पड़ेगी उठो।”

चित्रलेखा काँप उठी। उसने योगी के मुख पर एक धुंधली छाया देखी। योगी का सुन्दर तथा शान्त मुख-मण्डल विकृत हो उठा था, अपने

द्वारा प्रज्वलित की गयी हुई योगी की आग के शोलों की भयानकता को देखकर वह डर गई। वह उठ खड़ी हुई। उस समय उसकी शक्तियाँ लोप होती हुई मालूम पड़ रही थीं।

कुमारगिरि ने चित्रलेखा का हाथ पकड़ लिया—चित्रलेखा सिर से पैर तक सिहर उठी। उसे ऐसा मालूम हुआ मानो उसके हाथों पर जलते हुए लोहों के छड़ पहिना दिये गये हों। योगी का सारा शरीर जल रहा था। “साकार को अपनाने का प्रयोग कर रहा हूँ नर्तकी! इस साकार की भावना को तुमने मेरे हृदय में जाग्रत किया है, इसलिए तुम्हें मेरे इस प्रयोग में साथ देना पड़ेगा—नहीं लक्ष्य बनना पड़ेगा। समझो!”

चित्रलेखा सब कुछ समझती थी—इसी के लिए वह वहाँ आयी भी थी। पर उसने जिस बात की कल्पना की थी वह न मिली। वह मलयसमीरण से अठखेलियाँ करने आयी थी, ज्वालामुखी में जलने न आयी थी। उसने कहा, “गुरुदेव!”

कुमारगिरि ने चित्रलेखा को आर्लिंगन-पाश में कसकर बाँध लिया, उसके अधर चित्रलेखा के अधरों से मिल गये, उसने कहा—“नर्तकी! मैं तुमसे प्रेम करता हूँ!”

चित्रलेखा कुमारगिरि की गरम श्वास से जली जा रही थी, उसने साहस किया। बल लगाकर उसने अपना मुख कुमारगिरि के मुख से हटा लिया, “गुरुदेव! आप मार्ग-च्युत हो रहे हैं—आप अपनी साधना से विरत हो रहे हैं!” कुमारगिरि के हाथ का बन्धन टूट गया, वह चौंककर पीछे हट गये। उनकी आँखों का पागलपन एक क्षण में ही लोप हो गया। उनका मुख पीला पड़ गया। “अरे मैं क्या कर रहा था?” कुमारगिरि कह उठे, “मुझे क्षमा करना देवि!” कुमारगिरि तेजी से कुट्टी के बाहर चले गये।

चित्रलेखा वहीं बैठ गयी, बैठकर जो कुछ हुआ उसपर सोचने लगी। वह कुमारगिरि के पास आयी थी—और अब वह कुमारगिरि के पास से जाना चाहती थी।

चित्रलेखा भूमि पर लेट गयी और सिसक-सिसककर रोने लगी। उसने वुरा किया—यह उसने अनुभव किया, स्वयम् गिरी और उसने दूसरे को गिराया। इन्हीं वातों को सोचते सोचते वह सो गयी।

कुमारगिरि कुटी से बाहर निकलकर खुले मैदान में घूमने लगे। कुछ देर पहले उनका शरीर जल रहा था, अब उनका मस्तिष्क जल रहा था। पहिली जलन में सुख था, दूसरी जलन में दुख था। अपने कार्य-क्षेत्र से और अपनी साधना से वह बुरी तरह से गिर रहे थे। अपनी निर्वलता पर विजय पाना उनका कर्तव्य था।

सामने गहरा अन्धकार था—पीछे पाटलिपुत्र के दीपक टिमटिमा रहे थे। कुमारगिरि के पैर उस अन्धकार की ओर उठ गये, “नहीं, मेरे लिए अपने को रोकना असम्भव है, गिरना अनिवार्य है। अपने को बचाना ही होगा” वे यह कह उठे, उस समय तक वे अपनी कुटी से काफी दूर निकल आये थे।

एकाएक उनके अन्दर से किसी ने कहा “क्या तुम कायर नहीं हो ?”
उन्होंने पूछा, “क्यों ?”

उत्तर मिला, “तुम कहाँ जा रहे हो ? अपनी निर्वलता पर विजय पाना ही तो सब से बड़ी साधना है। जब तक तुम स्वयम् अपने को नहीं जीत लेते तब तक तुम अपूर्ण हो, इसीलिए तो चित्रलेखा तुम्हारे पास आयी है कि तुम अपने पर विजय पाओ। क्या तुम चित्रलेखा से भय खाते हो ? चित्रलेखा तो तुम्हें गिरने को नहीं प्रेरित करती। तुम अपने ही से भय खाते हो। निर्वलता तुममें ही है; उसे दूर करो ! साधना तुम्हारे पास ही है, तुम जाते कहाँ हो ?”

कुमारगिरि रुक गये “तो फिर ऐसा ही सही” उन्होंने धीरे से कहा, और वे अपनी कुटी की ओर लौट पड़े। जिस समय उन्होंने अपनी कुटी में प्रवेश किया उस समय चित्रलेखा सो गई थी, उसके कपोलों पर के आँसू सूख चुके थे, पर जहाँ-जहाँ से आँसुओं की धारा वही थी, उन स्थानों पर लकीर पड़ गयी थी। चित्रलेखा के सिरहाने कुमारगिरि खड़े हो गये,

वे चित्रलेखा के मुख की ओर कुछ देर तक देखते रहे । वे चित्रलेखा के मुख पर भुके—उस समय उन्होंने चित्रलेखा के अधरों पर मुसकराहट देखी; अपने अधरों को चित्रलेखा के अधरों से उन्होंने मिला दिया, पर स्पर्श के साथ ही वह चौंककर पीछे हट गये । चित्रलेखा के अधर कितने ठंडे थे, कितने निर्जीव थे !

कुछ सोचते हुए वे अपने आसन पर बैठ गये । उन्होंने समाधि लगाने का फिर प्रयत्न किया, पर वे ध्यानावस्थित न हो सके । इसके बाद वे लेट गये, और भविष्य में अपने ऊपर विजय पाने का संकल्प करते हुए वे सो गये ।

सत्रहवाँ परिच्छेद

प्रातःकाल चित्रलेखा जब उठी, उसने देखा कि नित्य के नियम के प्रतिकूल कुमारगिरि सो रहे थे। वह बाहर आयी, उस समय उसके सिर में दर्द हो रहा था, उसका सारा शरीर जल रहा था। रात भर उसने बुरे-बुरे स्वप्न देखे थे, उसका हृदय धड़क रहा था।

उस समय सूर्योदय हो रहा था, कलरव के स्वर उस प्रातःकालीन समीर में गूंज रहे थे जिसकी चाल नव विकसित कलिकाओं के सौरभ के भार से मन्द पड़ गयी थी। चित्रलेखा बाहर आकर खड़ी हो गयी, विशालदेव बाहर ही बट-वृक्ष के नीचे बैठा हुआ आराधना में व्यस्त था।

खड़ी होकर चित्रलेखा सोचने लग गयी। कुमारगिरि के पास उसका रहना उचित था या नहीं, इस समस्या के सुलभाने का वह प्रयत्न करने लगी। किन्तु अब वह जा कहाँ सकती थी? किस मुख को लेकर वह बीज-गुप्त के पास जावेगी? और क्या बीजगुप्त उसको स्वीकार भी कर लेगा? इन प्रश्नों का उत्तर दे सकने में वह असमर्थ थी। चित्रलेखा वहाँ से आगे बढ़ी, वह विशालदेव के पास पहुँची। विशालदेव ने उस समय अपने नेत्र खोले, चित्रलेखा को अपने निकट देखकर उसने अभिवादन करते हुए कहा, “देवि नमस्कार !”

चित्रलेखा के मस्तिष्क में एक विचार एकाएक उठ खड़ा हुआ, “नमस्कार” इतना कहकर वह वहाँ रुक गयी।

चित्रलेखा को आज अपने पास आते हुए देखकर विशालदेव को आश्चर्य हुआ। उसने पूछा, “क्या देवि को मुझसे कुछ कहना है?”

“हाँ!” चित्रलेखा ने कहा, “और जो कुछ कहना है वह बड़ी आवश्यक तथा महत्व की बात है। पर बात कहने के पहले मैं तुम्हारी प्रतिज्ञा चाहूँगी कि यदि उसे तुम न मानो तो किसी दूसरे पर वह बांत प्रकट न करो। यदि यह प्रतिज्ञा करो तो मैं वह बात कह सकती हूँ।”

“मैं प्रतिज्ञा करता हूँ ।”

“तो सुनो विशालदेव ! मैं समझती हूँ कि मैंने यहाँ आकर भूल की, मैं ऊपर उठने आयी थी, पर देखती हूँ कि यह ऊपर उठना नहीं है वरन् नीचे गिरना है ।”

विशालदेव मुसकराया “हाँ समझ रहा हूँ ।”

विशालदेव की मुसकराहट में छिपे हुए व्यंग को चित्रलेखा ने पूर्ण रूप से देख लिया, वह तिलमिला उठी, “तुम हँसते हो क्योंकि तुम मेरी बातों पर विश्वास नहीं करते । ठीक है तुमने उस रात को कुमारगिरि को मेरे साथ देखा था । तो फिर तुमसे स्पष्ट ही कह दूँ, जिस काम के लिए मैं यहाँ आयी थी, मैं वह नहीं कर सकती । यहाँ आने पर जब मैंने अपने को देखा तो मुझे मालूम हुआ कि मैंने भूल की । मैंने यहाँ आकर अपने को गिराया है, अधिक गिरने के लिए मैं तैयार नहीं । साथ ही मैं कुमारगिरि को भी गिरा रही हूँ, और यह एक महान पाप है । बोलो, इस पाप से छुटकारा पाने के लिए तुम मेरी सहायता कर सकोगे ?”

“इस काम के लिए मैं प्रस्तुत हूँ ।”

“विशालदेव, तुम आर्य वीजगुप्त का भवन जानते हो ?”

“हाँ ।”

“उनके भवन में श्वेतांक नाम का एक नवयुवक है । उससे कह दो कि मैं उससे मिलना चाहती हूँ ।”

“बहुत अच्छा ।”

उसी समय कुमारगिरि कुटी के बाहर निकले । उनको देखते ही वार्तालाप बन्द हो गया, कुमारगिरि अपना मस्तक झुकाए हुए अपराधी की भाँति आकर इन दोनों के पास खड़े हो गये । थोड़ी देर तक तीनों मौन रहे, उस मौन को कुमारगिरि ने तोड़ा, “आज मैं बड़ी देर तक सोता रहा ।” वे मुसकरा रहे थे, “मुझे इसका दुख है !”

इतना कहकर वे आगे बढ़ गये । विशालदेव ने कुमारगिरि के मुख पर एक विचित्र प्रकार का भाव-परिवर्तन देखा । इस भाव-परिवर्तन से

चकित होकर उसने चित्रलेखा की ओर देखा। “देवि ! गुरुदेव आज कूछ अस्वस्थ दिखलाई देते हैं।”

“हाँ गुरुदेव अस्वस्थ हैं, और उनकी अस्वस्थता का कारण यहाँ पर मेरी उपस्थिति है। विशालदेव तुम्हें मेरी सहायता करनी होगी, मेरे लिए नहीं अपने गुरुदेव के लिए।”

“मैं करूँगा—आज ही मैं आर्य बीजगुप्त के स्थान पर जाऊँगा।”

कुमारगिरि कुटी से दूर चले गये। वे दिन भर कुटी नहीं लौटे विशालदेव ने संध्या के समय पाटलिपुत्र से लौटकर चित्रलेखा से कहा, “देवि, आर्य बीजगुप्त तीर्थयात्रा के लिए काशी गये हुए हैं।”

चित्रलेखा इस सूचना से श्री-हत हो गयी। विशालदेव की ओर उसने देखकर कहा, “विशालदेव अब क्या उपाय है ?”

“देवि ! मेरी समझ में कुछ नहीं आ रहा है।”

“तुम्हारी समझ में कुछ नहीं आ रहा है और मेरी समझ में भी कुछ नहीं आ रहा है। यह विधि की विडम्बना है।” वह रुक गयी, पोड़ी देर तक वह मौन खड़ी रही, उसके नेत्र उस समय एक अज्ञात शून्य में कुछ ढूँढ़ रहे थे, “विधि की विडम्बना ही है, शायद अपने पापों का फल भी हो। एक आधार था, उसको छोड़ दिया है, बीजगुप्त को बैने त्यागा है, क्यों ?—नहीं, कुछ नहीं। मैं यहाँ ज्ञान पाने के लिए आई हूँ—क्या यही ज्ञान है ? भगवान मुझे ज्ञान दे रहा है। फिर यह सब क्यों ? विशालदेव ! तुम कुछ नहीं कर सकते, गुरुदेव कुछ नहीं कर सकते, मैं कुछ नहीं कर सकती और शायद भगवान भी कुछ नहीं कर सकते ! जो होना है, वह हो रहा है और होगा !” चित्रलेखा के नेत्र पागल की भाँति चमक उठे—उसका प्रशान्त मुख-मंडल विकृत हो उठा, आवेश में वह काँपने लगी।

विशालदेव चित्रलेखा के इस रूप को देखकर सहम उठा, “देवि, क्या तुम अपने गत-जीवन को फिर से नहीं अपना सकतीं ?”

चित्रलेखा हँस पड़ी, “गत-जीवन को फिर नहीं अपना सकतीं—कैसी

मूर्खता की बात कर रहे हो ? मैं आगे बढ़ आगे हूँ—पीछे जाने के लिए नहीं। पीछे जाना कायरता है, प्राकृतिक नियमों के प्रतिकूल है। संसार में कौन पीछे जा सकता है और कौन पीछे जा सका है ? एक-एक पल आगे बढ़ कर मनुष्य मृत्यु के मुख में पहुँचता है, यदि वह पीछे ही जा सकता, तो वह अमर न हो जाता ? आगे ! आगे ! यही तो नियम है, पाप में अथवा पुण्य में। समझे !” इतना कहकर चित्रलेखा वहाँ से चल पड़ी। विशालदेव अपने सामने से जाती हुई प्रतिमा को देखता ही रह गया।

चित्रलेखा आगे बढ़ी—लताकुंज में बैठे हुए कुमारगिरि को उसने देखा, वह उस ओर बढ़ी। कुमारगिरि चित्रलेखा को देखकर उठ खड़े हुए, चित्रलेखा ने पूछा “आज दिन भर गुहदेव कुटी की ओर नहीं गये ?”

“नहीं गया ! ठीक कहती हो नर्तकी, कुटी में जाना—उफ् बड़ा उपायनक है !”

“हाँ है ! फिर इसका कुछ उपाय है ?”

“उपाय ? केवल एक उपाय है नर्तकी, उस उपाय को तुम जानती हो मैं साकार की पूजा पर विश्वास करने लग गया हूँ, पर बिना तुम्हारी सहायता के साकार की उपासना असम्भव है !”

“साकार की उपासना भ्रम है !”

“इसका निर्णय करना तुम्हारा काम नहीं है नर्तकी कि साकार की उपासना ठीक है या भ्रम है। तुम मेरी शिष्या हों, तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम मेरी बात मानो !” इतना कहते-कहते कुमारगिरि तनकर खड़े हो गये।

इस बार चित्रलेखा डरी नहीं, भिखकी नहीं, उसी दृढ़ता के साथ उसने कहा, “योगी, अपने को भूलो मत, तुम्हारे सामने जो स्त्री खड़ी है वह इतनी असहाया नहीं है कि तुम उसपर शासन कर सको। तुम समझते हो कि तुमने मुझे दीक्षा दी है, यह तुम्हारा भ्रंम है, नहीं यहाँ पर तुम अपने ही को धोखा दे रहे हो। तुम किसे आज्ञा दे रहे हो ? क्या तुम यह नहीं जानते कि जिसपर तुम शासन करना चाहते हो तुमने अपने को उसका दास बना लिया है !”

कुमारगिरि निस्तेज होकर बैठ गये, बैठते हुए उन्होंने करुण स्वर में द्वीरे से कहा, “नर्तकी ! मैं तुमसे प्रेम करता हूँ !”

चित्रलेखा हँस पड़ी, “मैं जानती हूँ कि तुम मुझसे प्रेम करते हो, पर मैं तो तुमसे प्रेम नहीं करती ! एक क्षण के लिए मेरी इच्छा तुम पर आधिपत्य जमाने की हुई थी, और मैंने उसका प्रयत्न किया । मैं सफल भी हुई, पर उससे क्या ? पुरुष पर आधिपत्य जमाने की इच्छा स्त्री के पुरुष से प्रेम की द्योतक नहीं है, प्रकृति ने स्त्री को शासन करने के लिए नहीं बनाया है । स्त्री शासित होने के लिए बनाई गई है, आत्म-समर्पण करने के लिए । स्त्री अपने से निर्बल मनुष्य से प्रेम नहीं कर सकती, जिस मनुष्य पर उसने आधिपत्य जमा लिया वह मनुष्य उसके प्रेम का अधिकारी हो ही नहीं सकता । स्त्री का क्षेत्र है आत्म-समर्पण, अपने अस्तित्व को अपने प्रेमी के अस्तित्व में मिला देना; इसीलिए स्त्री उसी मनुष्य से प्रेम कर सकती है जो उसपर विजय पा सके, जो उसपर आधिपत्य जमा सके । योगी कुमारगिरि ! यहाँ पर विषमता है । पुरुष का प्रेम आधिपत्य जमाना है, स्त्री का प्रेम अपने को पुरुष के हाथ में सौंप देना है । पर यहाँ बात दूसरी है, यहाँ मैं स्वामिनी हूँ, तुम दास हो । मैंने तुम पर आधिपत्य जमा लिया है, तुमने आत्म-समर्पण कर दिया है । किस बल पर तुम मेरा प्रेम चाहते हो ?”

योगी कुमारगिरि ने मौन भाव से यह बात सुनी । नर्तकी ने जो कुछ कहा कटु होते हुए भी वह सर्वथा सत्य था । इस बार उन्हें अपनी कमज़ोरी का अनुभव हुआ, अपनी पराजय के विकराल रूप को उन्होंने देखा । कुछ देर तक वे सोचते रहे, इसके बाद वे उठ खड़े हुए । उनके मुख का पीलापन दूर हो गया था, उनके नेत्रों की चमक लौट आयी थी, “ठीक कहती हो, मैंने तुम्हें आत्म-समर्पण किया, मैं तुमसे निर्बल सावित हुआ । तुम्हारे द्वारा ईश्वर ने मेरा अभिमान तोड़ दिया, मुझे अपनी लघुता का औभास करा दिया । अब आगे कार्यक्रम क्या होगा, यह मैं निर्णय कर चुका हूँ । मैं तुम पर विजय पाऊँगा—प्रेम करने के लिए नहीं, केवल तुमपर विजय पाने के

लिए अपने को पतन से उठाने के लिए । विश्वास रखो, तुम कुमारगिरि को भविष्य में इतना निर्बल न पाओगी ! ”

चित्रलेखा ने गम्भीर भाव से कहा, “इसमें गुरुदेव की सहायता करना चाहती हूँ । ”

“किस प्रकार ? ”

“मैं गुरुदेव का आश्रम छोड़ना चाहती हूँ । मैं जानती हूँ कि गुरुदेव के मार्ग पर बाधा के रूप में आकर मैं खड़ी हो गई हूँ । मैं यह पाप कर रही हूँ । ”

“यह असम्भव है नर्तकी, तुम मेरा आश्रम नहीं छोड़ सकतीं ! यदि तुम चली जाओगी तो मैं फिर विजय किसपर पाऊँगा, तुम्हें मेरे साथ ही रहना पड़ेगा, समझों ! ”

“योगी, तुम्हें मेरे ऊपर विजय पाना नहीं है तुम्हें अपने ही ऊपर विजय पाना है; जब तक मैं यहाँ रहूँगी तुम अपने ऊपर विजय नहीं पा सकोगे, इतना मैं भली भाँति जानती हूँ, मुझे चले जाने देने में ही तुम्हारा कल्याण है ! ”

कुमारगिरि का मुख लाल हो गया, “नहीं, मेरे साथ तुम्हें रहना पड़ेगा । तुमने मुझे बहुत अधिक निर्बल समझ रखा है ! तुम्हारे जाने से मुझमें विरोध की भावना नहीं रहेगी तो फिर मैं अपने ऊपर विजय ही किस प्रकार पा सकूँगा ? अपने ऊपर करने वाले प्रयोग का एक साधन मुझको चाहिए था, ईश्वर ने तुम्हें मेरे पास इसीलिए भेजा था । मैं असफल रहा, पर असफलता मेरा क्षेत्र नहीं है, जब तक मैं पूर्ण रूप से सफल न हो जाऊँ मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगा । इतना याद रखना ! ”

“न जाने दोगे ? क्या तुम मुझको रोक सकते हो ? ”

“नहीं, तुम्हें मैं रोक नहीं सकता, शायद संसार में कोई भी व्यक्ति तुम्हें नहीं रोक सकता ! निर्बल सबल को रोक सके—यह असम्भव है । मैं केवल तुम से प्रार्थना कर सकता हूँ, आग्रह कर सकता हूँ, अनुरोध कर सकता हूँ । इतना तो तुम मातोगी कि तुमने मुझे गिराया है । ”

“मैंने तुम्हें नहीं गिराया है, गिराया तो तुमने ही है अपने को; पर तुम्हारे पतन में मेरा हाथ अवश्य है ?”

“ठीक है, मैंने ही अपने को गिराया है, और मैं ही अपने को उठा सकूँगा। पतन में तुम साधन हुई हो तो क्या अब अपने को उठाने में मेरे लिए तुमको साधन बनना तुम्हारा कर्तव्य नहीं है ?”

चित्रलेखा का मुख झुक गया, उसकी आँखें कुमारगिरि की आँखों से हटकर पृथ्वी पर गड़ गयीं, “हाँ ठीक कहते हो !”

“तो किर क्या तुम मेरी प्रार्थना स्वीकार न करोगी ? क्या कुछ दिन तुम मेरे साथ मुझे अपनी साधन पूरी कर लेने के लिए न रुक सकोगी ?”

चित्रलेखा थोड़ी देर तक मौन रही, धीरे से उसने पूछा, ‘योगी, कितनी अवधि चाहते हो ?’

“अवधि ! यदि मैं विजयी हो सका तो फिर तुम्हें मेरे पास ठहरने में क्या आपत्ति होगी ? यदि मैं विजयी हुआ तो फिर मैं यह समझ लूँगा कि मेरा मार्ग ठीक है ! और उस समय तुम भी उचित मार्ग को अनुसरण करोगी !”

“नहीं—मैं तुम्हारे मार्ग पर नहीं चल सकती। पर अभी मैं सकूँगी—यदि जाने की इच्छा होगी तो फिर बतलाऊँगी, उस समय तुम मुझे न रोक सकोगे !”

अठारहवाँ परिच्छेद

चित्रलेखा वीजगुप्त के जीवन से बिना उसकी इच्छा के चली गई थी, यशोधरा उसके जीवन में बिना उसकी इच्छा के आ गई थी। वीजगुप्त हँस पड़ा—जीवन उसके निकट एक समस्या थी।

काशी के जनरव में वीजगुप्त ने अपने हृदय की हलचल को डुबाना चाहा था, पर यह न हो सका, केवल हलचल का रूप बदल गया। छायाचित्र की तरह उसकी आँखों के आगे से चित्रलेखा का चित्र हटकर यशोधरा का चित्र आ गया था। दुःख की हलचल सुख के कम्पन में परिण हो गई थी। वीजगुप्त और उसके साथियों को काशी में आये हुए प्रायः एक सप्ताह हो गया था।

उस दिन संध्या हो गई थी, सब लोग एक साथ बैठे हुए काशी नगर के सुन्दर दृश्यों पर वार्तालाप कर रहे थे। मृत्युञ्जय ने कहा, “मेरी इच्छा होती है कि मैं काशी वास करूँ। पर क्या करूँ विवश हूँ, अभी गृहस्थी का जाल मुझको जंकड़े ही हुए है।” इतना कहकर मृत्युञ्जय ने अर्थ-भरी दृष्टि से वीजगुप्त की ओर देखा।

वीजगुप्त ने मृत्युञ्जय की बातों का अर्थ न समझने की कोशिश करते हुए कहा। “आर्य ! रत और विरत, अनुरागी और विरागी तथा गृहस्थ तथा संन्यासी में भेद बहुत थोड़ा है, और जो कुछ है भी वह नहीं के बराबर है।” इतना कहकर वह हँस पड़ा। “मेरी बात पर आर्य आश्चर्य तथा अविश्वास प्रकट कर सकते हैं, पर जो कुछ मैं कहता हूँ वह सत्य है।”

श्वेतांक को अच्छा अवसर मिल गया। मृत्युञ्जय का पक्ष समर्थन करते हुए उसने कहा, “स्वामिन्, सत्य क्या है, क्या कभी यह जाना भी जा सकता है ? परिस्थिति की अनुकूलता के दूसरे नाम को ही सत्य के नाम से पुकारा जाता है, और परिस्थितियाँ सदा एक-सी नहीं हुआ करतीं।”

मृत्युञ्जय के मुख पर मुस्कराहट दौड़ गई, “वत्स श्वेतांक, तुमने जो कुछ कहा यथार्थ होते हुए भी यह उस प्रश्न पर कोई प्रकाश नहीं डालता, जो हमारे सामने है। आर्य बीजगुप्त ! क्या आप अपनी बात को अधिक स्पष्ट कर सकेंगे ?”

बीजगुप्त श्वेतांक के अनुचित उत्तर से मरहित सा हो गया था, उसने शुष्क स्वर में कहा, “बात स्वयम् स्पष्ट है, मनुष्य कभी भी वास्तव में विरागी नहीं हो सकता। विराग मृत्यु का द्योतक है। जिसको साधारण रूप से विराग कहा जाता है वह केवल अनुराग के केन्द्र को बदलने का दूसरा नाम है। अनुराग चाह है, विराग तृप्ति है।” बीजगुप्त की दृष्टि अचानक हीं यशोधरा की ओर घूम गई। यशोधरा की दृष्टि बीजगुप्त की दृष्टि से मिल गई।

थोड़ी देर तक मौन का साम्राज्य रहा—उस मौन में निर्जीविता का सूनापन था, विवाद की छाया थी। श्वेतांक को छोड़कर कोई भी कुछ न सोच रहा था। श्वेतांक ने अनुचित बात कह दी थी—बीजगुप्त की बात का खण्डन कर के उसने अपराध किया था। श्वेतांक को इसका दुःख था।

यशोधरा ने श्वेतांक की ओर देखा, श्वेतांक का मुख पीला पड़ गया था। वह श्वेतांक के मनोभावों को समझ गई, उस मौन को तोड़ते हुए यशोधरा ने कहा, “आर्य बीजगुप्त ! यहाँ कब तक ठहरने का विचार है ?”

“ठीक नहीं कह सकता। कभी इच्छा होती है कि पाटलिपुत्र लौट पड़े, पर दूसरे हीं क्षण यहाँ कुछ दिन और रहने का जी चाहने लगता है ?” इस बार मृत्युञ्जय की ओर देखकर बीजगुप्त ने कहा, आर्य ! आपका कब तक यहाँ ठहरने का विचार है ?”

मृत्युञ्जय ने यशोधरा की ओर देखकर कहा, ‘मेरी इच्छा की यहाँ कोई बात नहीं है। यशोधरा की इच्छा से मैं यहाँ आया हूँ, उसकी इच्छा ही पर जाना भी निर्भर है।

बीजगुप्त ने यशोधरा को देखा, वह मुसकरा रही थी। यशोधरा की उस दिन की मुसकराहट में एक ऐन्द्रजालिक छवि थी, आज प्रथम बार बीजगुप्त ने यशोधरा के सौन्दर्य की सुधा के वास्तविक रूप को देखा और काफी देर तक उसको देखता ही रहा। उस समय यशोधरा भी एक-टक बींजगुप्त की ओर देख रही थीं। मृत्युञ्जय उस समय बाहर देखने लगे।

श्वेतांक को यह घटना असहज हो गई, "स्वामी, क्या आज नगर-पर्यटन करने का विचार नहीं है?"

बींजगुप्त चौंक उठा, उसने एकदम हीं अपनी आँखें यशोधरा से हटा लीं, और यशोधरा ने भी अपनी आँखें श्वेतांक की ओर फेर लीं। बींजगुप्त ने मृत्युञ्जय से कहा, "आर्य ! नगर में धूमने का क्या विचार है?"

"आज तो इच्छा नहीं होती।"

श्वेतांक ने यशोधरा से पूछा, "देवि यशोधरा, तुम चलोगी?"

यशोधरा हँस पड़ी, "यहाँ बैठकर हीं क्या कहँगी?"

बींजगुप्त ने कहा, "जाने की तो मेरी इच्छा भी नहीं है?"

"तो किर क्या आप आर्य श्वेतांक को मेरे साथ जाने की अनुमति दें सकेंगे?" यशोधरा ने बींजगुप्त से पूछा।

"अवश्य!" बींजगुप्त को अपनी इच्छा के विरुद्ध कहना पड़ा।

यशोधरा श्वेतांक के साथ चली गई।

बींजगुप्त ने मृत्युञ्जय से कहा, "आर्य ! आप काशी में यज्ञ करने जाले थे, क्या आपने विचार बदल दिया?"

मृत्युञ्जय हँस पड़े, "हाँ, कुछ दिनों के लिए विचार स्थगित कर दिया है। आर्य बींजगुप्त ! एक बात नहीं समझ पा रहा हूँ, क्या यज्ञ से बलि-प्रदान वाला अश नहीं निकाला जा सकता?"

"क्यों?" बींजगुप्त भी हँसने लगा, "आर्य तो बौद्ध-भिक्षुओं की बातों में अभी नहीं पड़े?"

“इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है ? इतने रक्त-पात से लाभ ! यह रक्त-पात धर्म में ग्लानि ही पैदा करता है । जो कुछ बुद्ध ने कहा उसमें तथ्य अवश्य है !”

“और शायद सत्य भी है !” धीरे से वीजगुप्त ने कहा ।

योड़ी देर तक दोनों मौन रहे । वीजगुप्त उठ खड़ा हुआ, “आर्य यहाँ जो नहीं लगता, यदि नगर में घूम आवें तो इसमें आपको कोई आपत्ति होगी ?”

“केवल चलने की कोई विशेष इच्छा न थी, आपत्ति का कोई प्रश्न ही नहीं है । यदि चलना हीं चाहते हो तो मैं भी तैयार हूँ ।”

रथ द्वार पर था, दोनों बैठ गए ।

नगर के कोलाहल से ऊबकर मृत्युञ्जय ने गंगा की ओर रथ फेर दिया । गंगा के किनारे नौकाएँ तैयार थीं—वीजगुप्त ने देखा कि श्वेतांक और यशोधरा एक नौका पर चढ़कर जाने वाले हैं । उसने पुकारा, “श्वेतांक !”

श्वेतांक उस समय गंगा के वक्ष पर नाचती हुई नौकाओं को देख रहा था, उसने वीजगुप्त की आवाज नहीं सुनी, यशोधरा ने श्वेतांक से कहा, “देखो पिता जीं के साथ आर्य वीजगुप्त आ रहे हैं !”

श्वेतांक ने अपना सर घुमाया—उस समय तक रथ रुक गया था और वीजगुप्त तथा मृत्युञ्जय रथ से उतर पड़े थे । उस समय वीजगुप्त का आना श्वेतांक को बुरा लगा—उसका मुख-मण्डल विकृत हो उठा । उसने धीरे से कहा, “नाश हो !” पर यशोधरा ने यह सुन लिया ।

यशोधरा गम्भीर हो गई, “आर्य श्वेतांक ! जीवन में संयम की बहुत बड़ी आवश्यकता होती है !”

श्वेतांक यशोधरा की इस गम्भीरता से सहम सा गया, फिर भी उसने कहा, “देवि ! संयम और प्रेम में विरोध होता है ।”

इस समय तक मृत्युञ्जय और वीजगुप्त पास आ गए थे ।

श्वेतांक के मुख से क्षोभ-मिश्रित निराशा के भाव अभी तक दूर न हुए थे। बीजगुप्त ने उसके मुखांकित भाव पढ़ लिए। उसने कहा, “श्वेतांक ! तुम लोगों के चले आने के बाद हम लोगों का चित्त नहीं लगा, और हम लोग भी चले आए !”

एक रुखी हँसी हँसते हुए श्वेतांक ने कहा, “मैंने स्वामी से पहले ही चलने को कहा था !”

सब लोग नौका पर बैठ गए और नौका गंगा की धारा में छोड़ दी गयी। चारों ओर गंगा के बक्षस्थल पर नौकाएँ उतरा रहीं—कहीं गाना हो रहा था, कहीं बाजे बज रहे थे और कहीं लोग बैठे कर रहे थे तथा हँस रहे थे।

यशोधरा ने कहा, “आर्य श्वेतांक ! तुम्हें काशी सुन्दर लगता है या पाटलिपुत्र ?”

श्वेतांक ने कुछ देर तक सोचकर कहा, “मुझे पाटलिपुत्र अधिक प्रिय है क्योंकि पाटलिपुत्र का-सा ऐश्वर्य यहाँ काशी में नहीं है। काशी तो विद्या का केन्द्र है !”

“और आर्य बीजगुप्त ! तुम्हें ?”

“मुझे आज-कल काशी अच्छा लगता है !”

यशोधरा ने फिर पूछा, “आज-कल क्यों ?”

“देवि यशोधरा ! किसी भी स्थान का प्रिय लगना परिस्थिति की अनुकूलता पर निर्भर है। हम स्थान को पसन्द नहीं करते—स्थान तो केवल एक जड़ पदार्थ है; हम पसन्द करते हैं वातावरण को जिसके हम अभ्यस्त हो जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को वह स्थान प्रिय होता है जहाँ उसका जन्म हुआ है और जहाँ उसका लालन-पालन हुआ है। सदा वहीं पर रहने से उसके मित्र वहीं पर बन जाते हैं। हमारा जीवन जड़ पदार्थों से निर्मित नहीं है, वह निर्मित है चेतन से, व्यक्तियों से जिनके संसर्ग में हम आते हैं। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक है कि मुझे पाटलिपुत्र अधिक प्रिय हो। पर बात यहीं समाप्त

नहीं हो जाती। एक ही परिस्थिति सदा सबको नहीं सुहाती, हमारी प्रकृति परिवर्तन चाहती है, परिवर्तन के लिए यह आवश्यक होता है कि हम कुछ दिनों के लिए दूसरी परिस्थितियों में जायें। वे दूसरी परिस्थितियाँ तब तक हमें सुहाती हैं जब तक हमारी परिवर्तन की भावना पूर्ण रूप से सन्तुष्ट नहीं हो जाती। मेरी तबीअत काशी से नहीं भरी इसलिए मुझे अभी काशी अधिक प्रिय है।”

यशोधरा हँस पड़ी, “आर्य बीजगुप्त ! आप में एक विचित्र प्रतिभा है, आपके तर्क अकाटच होते हैं” इस बार उसने श्वेतांक से हँसते हुए कहा, “आर्य श्वेतांक ! ज्ञान तर्क की वस्तु नहीं है, आप आर्य बीजगुप्त से सावधान रहिएगा।”

श्वेतांक ने भी हँसते हुए कहा, “देवि यशोधरा ! मैं आर्य बीजगुप्त का गुहभाई हूँ, तो मैं अपने गुरु महाप्रभु रत्नाम्बर से भी सावधान रहूँ।”

यशोधरा ने हिचकिचाते हुए कहा, “यह कैसे कहूँ ?”

बीजगुप्त ने कहा, क्यों नहीं देवि यशोधरा, यह भी कह सकती हो। जो बात ठीक समझती हो उसके कहने में संकोच ही क्या ?”

“नहीं संकोच की कोई बात नहीं आर्य बीजगुप्त आपके विषय में मैं सब कुछ कह सकती हूँ क्योंकि मैं आपसे इतनी घनिष्ठ हूँ कि मुझे आपमें और अपने में अधिक भेदभाव नहीं दिखता। पर महाप्रभु रत्नाम्बर—वे पूज्य हैं।”

बीजगुप्त ने यशोधरा की ओर देखा, उसकी आँखें यशोधरा की आँखों से मिल गईं। दोनों एक-टक कुछ देर तक दूसरे को देखते रहे। यशोधरा की आँखों में लज्जा न थी, संकोच न था। एक सुषमाथी, स्पष्टता थी, निश्छल भाव था। बीजगुप्त की धमनियों में रक्त तीव्रगति से प्रवाहित होने लगा, हृदय धड़कने लगा, सारे शरीर में एक कम्पन-सा दौड़ गया। बीजगुप्त ने यशोधरा से अपनी आँखें हटा लीं; श्वेतांक की आँखों से उसकी आँखें मिलीं। श्वेतांक की आँखों ने कह-

दिया कि वह बीजगुप्त की इस भावना को समझ रहा है। बीजगुप्त को अपने ऊपर कुछ क्रोध हुआ और श्वेतांक के ऊपर भी।

“श्वेतांक !”

“स्वामी !”

बीजगुप्त सम्हल गया, “कुछ नहीं—अरे हाँ, हम लोगों को यहाँ आये हुए कितने दिन हुए ?”

श्वेतांक समझ गया कि बीजगुप्त जो कुछ कहना चाहते थे वह नहीं कह रहे हैं। उसने कुछ गणना करके बतलाया, “आठ दिन !”

“तो अब पाटलिपुत्र लौट चलना उचित होगा।” इस बार उसने धीरे से, इतने धीरे से कि केवल श्वेतांक ही सुन सके, “चित्रलेखा को भूलना असम्भव है—पाटलिपुत्र चलने का प्रबन्ध करो !”

बीजगुप्त के इस अचानक विचार-परिवर्तन से श्वेतांक को प्रसन्नता हुई, मृत्युञ्जय तथा यशोधरा को आशर्चय हुआ। मृत्युञ्जय ने कहा, “क्या आर्य बीजगुप्त का वास्तव में लौट चलने का विचार है ?”

बीजगुप्त ने सिर नीचा कर लिया, “आर्य मृत्युञ्जय ! मुझे क्षमा करियेगा। मुझमें एक बहुत बड़ा अवगुण है कि मैं अपनी प्रेरणाओं पर अधिक अवलम्बित हूँ। मैं नहीं जानता कि एक धंटे वादे में क्या करूँगा। इस समय एकाएक मुझे पाटलिपुत्र की याद आ गई—काशी एकदम मुझे काटने लगा। काशी में एक पल रहना भी मुझे अब बड़ा कष्ट-साध्य होगा।”

यशोधरा ने पूछा, “तो कब चलने का विचार है—हम लोगों को भी प्रबन्ध करना होगा। आर्य बीजगुप्त ! प्रेरणा पर काम करते समय दूसरों की सुविधा पर व्यान देना भी मनुष्य का कर्तव्य है।”

बीजगुप्त का मुख लज्जा से पीला पड़ गया। “ठीक कहती हो देवि यशोधरा ! मुझे क्षमा करना। तुम्हारी सुविधा पर ही मैं अवलम्बित हूँ, इतना विश्वास रख्तो। जब तुम उचित समझो तभी मैं चलूँगा।”

“नहीं आर्य बीजगुप्त ! मुझे कोई असुविधा नहीं—मैंने तो केवल साधारण बात कही थी । आपको कष्ट न हो—हम लोग कल संध्या तक लौट चलने का प्रबन्ध कर लेंगे । कुछ सामान मोल लेना है, आर्य श्वेतांक के साथ मैं बाजार से वह सामान कल ले आऊँगी ।”

उन्नीसवाँ परिच्छेद

बीजगुप्त को अपने ऊपर आश्वर्य हुआ। वह बिना अपनी इच्छा के बिना जाने हुए यशोधरा की ओर आकर्षित होता जा रहा था, और सम्भवतः वह यशोधरा को अपना भी लेता यदि उस दिन श्वेतांक की मुखांकित भावनाओं ने उसको सावधान न कर दिया होता।

वह काशी आया था, अपने दुःख को भूलने के लिये—अपनी हलचल को दूर करने के लिए। पाटलिपुत्र में रहकर, चित्रलेखा के निकट रहकर, अपने ऐश्वर्य की परिस्थितियों में रहकर उसके हृदय का धाव अच्छा नहीं हो सकता था, पाटलिपुत्र में उसने यही सोचा था। यही सोचकर वह वहाँ से चला था—विराग की भावना उसे वहाँ खींच लाई थी, एक लक्ष्य-हीन पथिक की भाँति वह घर के बाहर निकल पड़ा था।

‘लक्ष्यहीन पथिक ?’ बीजगुप्त की विचार-धारा बदल गई। “क्या कोई भी व्यक्ति लक्ष्यहीन है—अथवा लक्ष्यहीन होना व्यक्ति के लिए कभी सम्भव है ? शायद हाँ !” बीजगुप्त असमंजस में पड़ गया—एक दूसरा प्रश्न उसी समय उसके सामने खड़ा हो गया, ‘क्या मनुष्य का कोई लक्ष्य भी है। कोई भी व्यक्ति बता सकता है कि वह क्या करने आया है, क्या करना चाहता है और क्या करेगा ? नहीं, यही तो नहीं सम्भव है। मनुष्य परतंत्र है, परिस्थितियों का दास है, लक्ष्य-हीन है। एक अज्ञात शक्ति प्रत्येक व्यक्ति को चलाती रहती है, मनुष्य की इच्छा का कोई मूल्य ही नहीं है। मनुष्य स्वावलम्बी नहीं है, वह कर्ता भी नहीं है, साधन-मात्र है !’

बीजगुप्त ने करवट बदली। वह सो न सका, अर्ध-रात्रि बीत चुकी थी, चारों ओर घोर निस्तब्धता का साम्राज्य था, बीजगुप्त ने फिर

सोचना आरम्भ किया 'मैं कल पाटलिपुत्र चल रहा हूँ। क्यों?' वह सोचने लगा, 'चित्रलेखा से मिलने के लिए, चित्रलेखा को अपने यहाँ स्थिंच लाने के लिए।' उसे अपने ऊपर विश्वास था, वह जानता था कि यदि वह हठ करे तो चित्रलेखा उसका विरोध न करेगी। 'नहीं, चित्रलेखा के पास अब न जाऊँगा, क्यों जाऊँ? क्या मैंने चित्रलेखा को छोड़ा है? नहीं, चित्रलेखा ने मुझे छोड़ा है? यह क्यों? सम्भवतः यहीं विधि का विधान है। यदि यहीं विधि का विधान है, तो अमिट है। फिर क्यों दुःख किया जाय? चित्रलेखा गई—जाय। मैं अपने जीवन को क्यों नष्ट करूँ?'

बीजगुप्त ने आँखें बन्द कर लीं, वह सोने का प्रयत्न करने लगा। 'क्षणा त्याग और वेदना से जीवन नष्ट होता है। क्या दुःख जीवन का एक भाग नहीं? क्या प्रत्येक व्यक्ति अपने भाग्य में सुख ही लेकर आता है? नहीं। दुख इतना ही महत्व का है जितना सुख। तो फिर दुख ही भेला जाय—तो फिर त्याग का ही मार्ग अपनाया जाय। मुझे अपना कर्तव्य करना चाहिए—मेरा कर्तव्य क्या है?'

बीजगुप्त उठ खड़ा हुआ—उसने एक गिलास ठंडा पानी पिया, उसने अपना मुंह बोया, उसके बाद वह लेट गया।

'मेरा कर्तव्य क्या है? मैं पैदा हुआ हूँ कर्म करने के लिए। मेरा कर्तव्य है कि मैं गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करूँ, मेरा कर्तव्य है कि मैं अपने वंश की वृद्धि करूँ। इसके लिए मुझे आवश्यक है कि मैं विवाह करूँ! क्या विधि का यहीं विधान है? सम्भवतः चित्रलेखा मेरे जीवन से इसीलिए चली गई है। विवाह करूँ—एक बार गृहस्थी का अनुभव करूँ। और विवाह के लिए योग्य पात्री भी है। यशोधरा-यशोधरा! सौन्दर्य में चित्रलेखा से यशोधरा किसी अंश में कम नहीं है। यशोधरा रत्न है—एक धर्मित्र प्रतिमा है। क्या यशोधरा से विवाह करना ही पड़ेगा? स्त्रियोचित सभी गुण यशोधरा में विद्यमान हैं फिर यशोधरा ही सही। पर क्या सम्भव है? मैं एक बार यशोधरा को अस्वीकार

कर चुका हूँ। किस मुख से यशोधरा को मृत्युंजय से माँगूँ। बहुत सम्भव है महासामन्त मृत्युंजय यशोधरा का पाणि देने से इनकार कर दें।' बीजगुप्त हँस पड़ा, 'नहीं—असम्भव! अब मैं यशोधरा से विवाह की बात नहीं सोच सकता। बहुत विलम्ब हो गया है—बहुत विलम्ब हो गया है। चित्रलेखा—बस चित्रलेखा ही मेरे जीवन में है।'

बीजगुप्त फिर उठ खड़ा हुआ। उसने समझ लिया कि उसके लिए नींद आना असम्भव है। उस समय चन्द्रमा निकल रहा था। बीजगुप्त भवन के बाहर निकला, वह गंगा-तट की ओर चल दिया। दिन निकलने में अभी दो प्रहर बाकी थे।

बीजगुप्त गंगा-तट पर पहुँचा। कुछ लोग बैठे हुए वार्तालाप कर रहे थे—बीजगुप्त भी एक कोने में जाकर बैठ गया।

उस स्थान पर तीन व्यक्ति थे। जो व्यक्ति उस समय बोल रहा था उसकी अवस्था प्रायः सत्तर वर्ष की थी। वह भद्र था, उसके मुख पर झुर्रियाँ पड़ी थीं। उसकी बातचीत से मालूम होता था कि वह संन्यासी है। शेष दो उम्र में उससे अधिक छोटे थे। उसकी दाहिनी ओर एक दुबला-पतला युवक था जिसकी अवस्था प्रायः पच्चीस वर्ष की थी। वह मझोले कद का था, उसके मुख पर चिन्ता की लकीरें पड़ गई थीं। संन्यासी की बाई और एक मोटा-सा अधेड़ था जिसकी अवस्था प्रायः पचास वर्ष की थी। उसकी दाढ़ी बड़ी और घनी थी, उसके केश पकने लगे थे।

संन्यासी कह रहा था, "अभी तुम्हारी संन्यास लेने की अवस्था नहीं है, जाओ अपना कर्तव्य पालन करो और पिता की आज्ञा मानो।"

नवयुवक ने संन्यासी के पैर पकड़ लिये, "मैं आपका आश्रित हूँ—मुझे संन्यास की दीक्षा दीजिए। अब जीवन में मुझे कोई अनुराग नहीं रह गया है। संसार में रहने में कोई उद्देश्य तो होना ही चाहिए। जब एक बार विरक्ति हो गयी तो संसार में रहकर मैं अपनी आत्मा

का हनन करूँगा । मुझे वहाँ शान्ति न मिलेगी । आप मेरे पिता जी से पूछ सकते हैं कि ये दो वर्ष मेरे कितने यातनापूर्ण थे ।”

अधेड़ व्यक्ति ने कहा, “हाँ; पर तुम मेरी बात भी तो नहीं मानते । मैं कहता हूँ दूसरा विवाह कर लो । अभी तुम्हारी उम्र ही क्या है ? जीवन-मरण तो सदा साथ लगा रहता है । तुम्हारे कोई सन्तान नहीं । है—अभी संन्यास ग्रहण करना अनुचित है । विवाह कर लेने पर तुम्हारा जीवन फिर से अनुरागमय हो जायगा ।

संन्यासी ने उस युवक से कहा, “तुम्हारे पिता ठीक कहते हैं । वत्स, प्रेम एक मिथ्या कल्पना है । स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध केवल संसार में ही होता है—संसार से पृथक् दोनों ही भिन्न-भिन्न आत्माएँ हैं । संसार में भी स्त्री और पुरुष में आत्मा का ऐक्य सम्भव नहीं है । प्रेम तो केवल आत्मा की घनिष्ठता है वह घनिष्ठता कोई बड़े महत्व की वस्तु नहीं होती, वह टूट भी सकती है । उस घनिष्ठता के टूटने पर अपने जीवन को दुखमय बना लेना कोई बुद्धिमत्ता नहीं है । तुम्हारा कर्तव्य है कि तुम अपना विवाह करो—विवाह न कर के तुम कर्तव्य से विमुख हो रहे हो ।

“यह किस प्रकार ?”

“सुनो ! स्त्री अबला है । प्रत्येक पुरुष का यह कर्तव्य है कि वह एक अबला को आश्रय दे । विवाह द्वारा ही पुरुष अबला स्त्री को आश्रय देता है । यदि पुरुष स्त्री को आश्रय न दे तो स्त्री की दशा बड़ी शोचनीय हो जाय । इधर पुरुष के सामने भी काफी कठिनाइयाँ आवें । जिस समय तुम विवाह न करके संन्यासी होने की बात सोचते हो तुम कायरता करते हो । तुम एक अबला को आश्रय देने का जो तुम्हारा कर्तव्य है उससे विमुख होते हो ।”

यवक ने कहा, “पर महाराज, मैं भोग-विलास को तिलांजलि देकर तपस्या की अग्नि में तपने जा रहा हूँ, यह तो कायरता का द्योतक नहीं है ।”

संन्यासी हँस पड़ा, “तुम तपस्या में तपना चाहते हो । क्यों ? केवल इसलिए कि जिससे तुमने प्रेम किया वह तुम्हारे मार्ग से चला गया । पर तुम्हारी यह तपस्या व्यर्थ है—यह एक तरह से आत्म-हत्या है । इस तपस्या का कोई लक्ष्य नहीं है, व्यर्थ ही तुम अपनी आत्मा का हनन करना चाहते हो ।”

युवक ने संन्यासी के चरणों पर अपना मस्तक नमा दिया, “जो आप कहते हैं मान्य है ।” इसके बाद वह युवक अपने पिता के साथ चला गया ।

बीजगुप्त ने संन्यासी के सामने मस्तक नमाया । संन्यासी ने मुस्कराकर पूछा, “क्या तुम भी संन्यास लेना चाहते हो ?”

बीजगुप्त ने कहा, “नहीं, अभी तो संन्यास लेने का कोई विचार नहीं है, । आपकी बातों से मुझे बड़ा आनन्द आया, इसलिए बैठ गया हूँ ।”

संन्यासी मुस्कराया, “जो व्यक्ति रात्रि में इस समय गंगा के तट पर आ सकता है—और जो कंगाल अथवा संन्यासी नहीं है, वह व्यक्ति अवश्य किसी उद्विग्नता से पीड़ित है ।”

“आपका अनुमान उचित है” बीजगुप्त ने उत्तर दिया, “मेरी उद्विग्नता असाधारण है, आपकी बातों में मैंने उस उद्विग्नता से सम्बद्ध समस्या को देखा है । क्या मैं इस सम्बन्ध में अधिक प्रश्न कर सकता हूँ ?”

“प्रसन्नतापूर्वक !”

“आपने अभी कहा था कि युवा के लिए असफल प्रेम पर अपना जीवन बलिदान करना आत्म-हत्या करना है, पर क्या प्रेम की स्मृति की टीस मनुष्य-जीवन में स्वाभाविक अथवा प्राकृतिक नहीं है ? क्या वेदना को दबाना अथवा उसके प्राकृतिक रूप को कृत्रिम उपायों द्वारा भूलने में अपनी आत्मा का हनन नहीं होता !”

संन्यासी कुछ देर तक मौन रहा । उसके बाद उसने आरम्भ

किया, “जो कुछ तुम कहते हो वह ठीक है। दुख स्वयं ही समय के साथ दूर हो जाता है, भिन्न प्रकृति के पुरुषों के साथ दुख के दूर होने की अवधि भर ही भिन्न होती है। उसको कृत्रिम उपायों द्वारा उस अवधि के पहिले ही दूर करना अवश्य अप्राकृतिक है। पर प्रत्येक अप्राकृतिक व्यवहार आत्मा का हनन नहीं है—यह याद रखना। कृत्रिमता को हमने इतना अधिक अपना लिया है कि अब वह स्वयम् ही प्राकृतिक हो गयी है। वस्त्रों का पहिना अप्राकृतिक है, जो भोजन हम करते हैं उस भोजन का करना अप्राकृतिक है, वह भोग-विलास अप्राकृतिक है, यह ऐश्वर्य ही अप्राकृतिक है। प्राकृतिक जीवन एक भार है—उस जीवन में हलचल लाने के लिए ही तो ये खेल-तमागे, नाच-रंग, उत्सव इत्यादि मनुष्य ने बनाए हैं। और अब हम इन्हीं सब को जीवन कहने लगे हैं। दुख को कृत्रिम उपायों द्वारा दूर करना कभी भी आत्मा का हनन नहीं है, क्योंकि वह यद्यपि अप्राकृतिक है, पर स्वाभाविक है।”

“धन्यवाद !” वीजगुप्त उठ खड़ा हुआ, “आपने मेरे मस्तिष्क से एक भार हटा दिया। आपकी वातों से मैं अपना कर्तव्य निश्चित करने में समर्थ हुआ हूँ। विदा !” इतना कहकर वीजगुप्त वहाँ से चल दिया।

उस समय प्रातःकालीन समीरण चलने लगा, पूर्व दिशा में हलका सा प्रकाश हो रहा था, पक्षियों ने उड़ना आरम्भ कर दिया था। वीज-गुप्त लौट आया—लौटकर वह सो गया।

जिस समय वह सोकर उठा, दिन दो पहर चढ़ गया था। श्वेतांक के साथ यशोधरा आवश्यक चीजें खरीदने वाजार चली गई थी।

नित्य-कर्म से निवृत होने के बाद वीजगुप्त मृत्युञ्जय के पास गया। मृत्युञ्जय ने वीजगुप्त को देखते ही कहा, “आर्य वीजगुप्त, आज आप बहुत विलम्ब से उठे, क्या रात्रि के समय आपको अच्छी तरह से नींद नहीं आई ?”

“हाँ ! मैं रात भर सोचता रहा ।”

“क्या सोचते रहे ?”

भावी जीवन के विषय में ही कुछ सोचता रहा ।”

मृत्युञ्जय किञ्चित् मुसकराए, “जीवन से चित्रलेखा के निकल जाने के बाद भावी जीवन पर विचार करना स्वाभाविक ही है । आर्य वीजगुप्त ! कुछ निर्णय भी किया ?”

मृत्युञ्जय की मुसकराहत में छिपे हुए व्यंग से वीजगुप्त तिलमिला उठा । अपनी बात कहते कहते वह सक गया, “अभी कुछ निर्णय नहीं किया पर शीघ्र ही कुछ-न-कुछ निर्णय करना होगा ।”

“मैं जानता हूँ आर्य वीजगुप्त कि तुम्हारा क्या निर्णय होगा । मैं मनुष्यों को मनःप्रवृत्ति को कुछ-कुछ पहिचानने लगा हूँ ।”

वीजगुप्त ने बात बदलते हुए कहा, “आर्य ! आपने अपने सेवकों को चलने का प्रबन्ध करने का आदेश दे दिया होगा ?”

“हाँ, और तुम्हारे सेवकों को भी श्वेतांक से आदेश दिलवा दिया है ।”

“अच्छा किया !”

इस समय यशोधरा का कण्ठ-स्वर बाहर सुनाई पड़ा, “आर्य श्वेतांक ! यदि यह मणिमाला पिताजी ने पसन्द न की तो तुम्हीं को फेरनी पड़ेगी—तुम्हारे कहने से ही मैंने इसको खरीदा है ।” इत शब्दों के साथ यशोधरा ने प्रवेश किया ।

यशोधरा ने हँसते हुए कहा, “आर्य वीजगुप्त ! आप सोते रह गये और देखिये, मैं कितनी वस्तुएँ ले आयी; आपने अपने लिए कुछ नहीं खरीदा ?”

वीजगुप्त ने मुसकराते हुए कहा, “देवि यशोधरा ! मुझे किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं ?”

“आवश्यकता तो मुझे भी न थी पर काशी से लौटते समय कुछ काशी की सौगात तो ले चलनी चाहिए थी ।” इतना कहकर यशोधरा ने अपना सामान खोलना आरम्भ किया ।

“यह कैसी है ?” एक मणिमाला यशोधरा ने वीजगुप्त के हाथ में देते हुए पूछा ।

“अच्छी है पर काफी अधिक मूल्यवान भी होगी ।”

“हाँ ! मैंने अभी इसे मोल नहीं लिया है, केवल पिताजी के दिखलाने के लिए लेती आई हूँ ।”

मृत्युञ्जय ने मणिमाला ले ली “यदि तुम्हारी इच्छा है तो ले लो ।”

यशोधरा ने अन्य वस्तुएँ दिखलाईं । सभी पसन्द कर ली गईं ।

वीजगुप्त ने श्वेतांक की ओर देखा, “तुमने कुछ नहीं लिया ?”

“स्वामी से मैंने कुछ पूछा नहीं था—और फिर मुझे कुछ आवश्यकता भी तो नहीं थी ।”

“नहीं ! तुम्हें कुछ अपने लिए अवश्य लेना चाहिए था । मैं भी चलता हूँ । देवि यशोधरा ! यदि तुम्हें कष्ट न हो तो फिर से नगर चल सकती हो । मुझे अपने लिए वस्तुओं के पसन्द करने में तुम सहायता दे सकोगी ।” वीजगुप्त ने यशोधरा की ओर देखा ।

“मैं चल सकती हूँ—पर भोजनोपरान्त । अभी तो बहुत थक गई हूँ ।”

भोजन करने के बाद वीजगुप्त ने मृत्युञ्जय से पूछा, “आर्य ! आप भी चलिएगा ?”

“नहीं—मैं अब बहुत वृद्ध हो गया । मुझे नगर के जनरव में अच्छा नहीं लगता ।”

वीजगुप्त श्वेतांक और यशोधरा को लेकर बाजार चला । सबसे पहिले तीनों जौहरी की दूकान पर रुके । वीजगुप्त ने और श्वेतांक ने हीरे की अँगूठियाँ लीं । सामने मोतियों का बहुमूल्य हार था, यशोधरा उस ओर देख रही थी । वीजगुप्त ने वह हार निकलवाया, “देवि यशोधरा ! यह हार कैसा है ?”

“बड़ा सुन्दर है ! आर्य वीजगुप्त ! मैंने पहिले इसे न देखा था नहीं

तो मणिमाला न लेकर मैं यही हार ले री। इतना कहकर उसने श्वेतांक से कहा, “आर्य श्वेतांक, यह सब आपके ही कारण हुआ।”

जौहरी से हार लेकर वीजगुप्त ने यशोधरा के गले में पहिना दिया। “देवि यशोधरा, यह मेरी भेट है, इसे स्वीकार करो!”

वीजगुप्त के कर-स्पर्श से यशोधरा सिर से पैर तक कांप उठी। हार उतारते हुए उसने कहा, “आर्य वीजगुप्त! मैं बिना अपने पिता की आज्ञा के यह हार स्वीकार करने में असमर्थ हूँ।”

हार वीजगुप्त ने अपने हाथ में ले लिया “देवि यशोधरा! इस हार को स्वीकार करने में तुम्हें कोई आपत्ति न होनी चाहिए, फिर भी तुमने पिता की स्वीकृति की जो बात कही है वह उचित ही है।”

बीसवाँ परिच्छेद

कुमारगिरि को चित्रलेखा के व्यवहार पर आश्चर्य हुआ। चित्रलेखा उसके पास आने को इतना उत्सुक थी, वह चित्रलेखा की ओर आकर्षित न हुआ था, किन्तु चित्रलेखा ही उसकी ओर आकर्षित हुई थी। फिर चित्रलेखा में यह परिवर्तन क्यों हुआ?

कुमारगिरि को चित्रलेखा के व्यवहार से अधिक आश्चर्य अपने व्यवहार पर हुआ। उसने चित्रलेखा को अपने से दूर रखने का भरसक प्रयत्न किया था। फिर उसने क्यों चित्रलेखा को स्वीकार कर लिया था? क्या इसलिए कि वह अपने ऊपर अपने ही अविश्वास को दूर करना चाहता था? कुमारगिरि का क्षेत्र विजय था—पराजय की भावना उसके लिए नयी थी। शायद कुमारगिरि को अपनी कमज़ोरी का पता था, उसी कमज़ोरी को दूर करने के लिए ही उसने चित्रलेखा को स्वीकार किया था, उसने प्रयोग किया, वह असफल रहा। असफलता भी किसी भयानक थी? वह अपने से तो हारा ही, वह हारा एक साधारण नर्तकी से—स्वयम् अपने से पराजित होने पर उसे दुःख था, पर उस दुःख की भावना को नर्तकी से पराजित होने पर ऋषि की भावना ने दबा दिया। कुमारगिरि कह उठा, “नहीं नर्तकी चित्रलेखा को वश में करना ही होगा। पर किस प्रकार?”

“चित्रलेखा मुझसे क्यों प्रेम नहीं कर सकती?” कुमारगिरि के मन में प्रश्न उठा “शायद इसलिए कि वह एक व्यक्ति से प्रेम करती है। यदि चित्रलेखा वीजगुप्त से प्रेम करना छोड़ दे तो सम्भव है, नहीं निश्चय है कि वह मुझे आत्मसमर्पण कर दे। वीजगुप्त को चित्रलेखा के मार्ग से हटाना होगा।”

चित्रलेखा को कुमारगिरि के स्थान पर आये हुए दो मास से

अधिक हो गया। गत घटना भी एक मास पुरानी हो गई। इस वींच में कुमारगिरि ने अपने को संयत रखा—किंचित् कमज़ोरी का भी प्रदर्शन उन्होंने न होने दिया। कुछ दिनों तक के लिए उनका यह विचार हो गया कि वे चित्रलेखा को अपने पास रखते हुए भी विषय-वासना को दूर रखें—पर यह भावना स्थायी न रह सकी। एक बार जो आग प्रज्वलित हो चुकी थी वह आहुति माँग रही थी। कुमारगिरि अपने निश्चय पर दृढ़ न रह सके।

उस दिन रात्रि के समय कुमारगिरि ने चित्रलेखा को अपने पास बैठने का आदेश देकर, कहा, “देवि चित्रलेखा ! एक मास हो गया, इस वींच में मैंने अपने को उठाने का प्रयत्न किया है। अब मुझसे मेरी दुर्बलता दूर हो गई, मैं यह समझ रहा हूँ।”

“सम्भवतः !” चित्रलेखा केवल मुसकरा दी।

कुमारगिरि ने अपने होठ चबाते हुए कहा, “मैंने सुना है कि आर्य वीजगुप्त काशी की यात्रा करने गये हैं—उनके साथ आर्य मृत्युञ्जय तथा उनकी कन्या यशोधरा भी गयी है।”

“क्या यशोधरा भी वीजगुप्त के साथ गयी है ?” चित्रलेखा चौंक उठी।

इस बार कुमारगिरि मुसकराये, “इसमें आश्चर्य ही क्या है ? देवि चित्रलेखा ! तुमने आर्य वीजगुप्त को यह कहकर छोड़ा है कि वे यशोधरा से विवाह करके गार्हस्थ्य जीवन व्यतीत करें—तुमने उचित किया। आर्य वीजगुप्त के लिए क्या यह उचित नहीं है कि यशोधरा से विवाह कर लें ?”

“मैं नहीं जानती ! मैं नहीं जानती !” चित्रलेखा का स्वर तीव्र हो गया, “कृपा करके वीजगुप्त के सम्बन्ध में आप मुझसे कोई बात न करें।”

“वीजगुप्त के सम्बन्ध में कोई बात न करूँ ? क्यों, इसलिए कि तुम वीजगुप्त से प्रेम करती हो। तुम्हें यह असह्य है कि वीजगुप्त किसी

दूसरी स्त्री से प्रेम करे ! फिर तुमने बीजगुप्त को छोड़ा ही क्यों था ? तुम समझती हो कि स्त्री को ही सब कुछ करने का अधिकार है, पुरुष को नहीं है, तुम समझती हो कि बीजगुप्त तुम्हारा दास बनकर रहे—पर यह सम्भव नहीं है ।”

कुमारगिरि के स्वर में प्रतिहंसा का एक तीखा व्यंग था। जिस स्त्री से वे पराजित हुए थे, उसको पराजित करना ही उनका उद्देश्य था।

चित्रलेखा आवेश से काँपने लगी। “मैंने जो कुछ किया वह बीजगुप्त के भले के लिए किया। मैं बीजगुप्त को समाज की दृष्टि से नीचे गेरा रही थी, मैंने उनको छोड़कर उनको ऊपर उठाने में सहायता दी है ।”

“यह किस प्रकार मान लूँ। तुम अपने को धोखा दे रही हो देवि चित्रलेखा ! जिस समय तुमने बीजगुप्त को छोड़ा था उस समय तुमने उनको मुझसे प्रेम करने के लिए छोड़ा था ।” कुमारगिरि का स्वर तीव्र हो गया, आज कुमारगिरि ने अपने में अपनी उसी पुरानी स्फूर्ति, अपनी उसी पुरानी गुह्ता, अपने उसी पुराने तेज का अनुभव किया, जिसको वे चित्रलेखा के अपने जीवन में आने के बाद खो चुके थे। “तुम बीजगुप्त को धोखा दे सकती हो, तुम मुझे धोखा दे सकती हो पर तुम अपने को धोखा नहीं दे सकती। तुमने वासना के आवेश में आकर पवित्र प्रेम को ठुकरा दिया था—तुमने मुझमें कुछ देखा और तुम मेरी ओर आकर्षित हो गयीं ! उस समय तुममें पशुता की प्रवृत्ति प्रबल हो उठी थी—तुमने मनुष्यता को तिलाञ्जलि दे दी थी। तुम विना बीजगुप्त की इच्छा के बीजगुप्त का जीवन भार बनाकर मेरे पास चली आई—और बीजगुप्त ? उसने एक साधारण नर्तकी पर गृहस्थी के सुख को बलिदान कर दिया। यही नहीं, उसने अपने जीवन को नष्ट कर दिया—केवल इसलिए कि वह तुम से प्रेम करता था; और प्रेम की पवित्रता को अनुभव करता था !”

चित्रलेखा चिल्ला उठी; “बस करो ! बस करो !”

कुमारगिरि ने अपनी आँखें चित्रलेखा पर गड़ा दीं—इसके बाद वे हँस पड़े “वस करूँ, इतनी ही बात से तुम चंचल हो उठीं नर्तकी ! — नहीं, बात तूरी करूँगा और तुम्हें सुननी पड़ेगी। तुमने जो कुछ किया उसका बदला तुमको मिल गया ! तुम समझती हो बीजगुप्त तुमसे अब भी प्रेम करता है—तुम समझती हो कि बीजगुप्त के यहाँ लौटने पर जब तुम बीजगुप्त के पास जाओगी वह तुमको स्वीकार कर लेगा ? यदि तुम ऐसा समझती हो तो भूल करती हो। तुम्हारे विष के प्रभाव को दूर करने वाला अमृत उसे मिल गया। तुमने उसे मिटाने में कुछ भी न उठा रखवा था; पर यशोधरा ने उसे बचा लिया। और अब बीजगुप्त यशोधरा के साथ वैवाहिक जीवन के आनन्द का उपभोग कर रहा है !”

चित्रलेखा का मुख पीला पड़ गया, “क्या तुम सच कह रहे हो योगी ? क्या बीजगुप्त ने यशोधरा के साथ विवाह कर लिया ? नहीं योगी ! यह नहीं सम्भव है !”

“यह सम्भव नहीं है !” कुमारगिरि के स्वर में, हृदय में बर्द्धी-सा चुभने वाला व्यंग था, “तुम्हारा वासना के वशीभूत होकर पवित्र प्रेम को ठुकराकर मेरे पास चला आना सम्भव है, और बीजगुप्त का एक स्वर्णीय प्रतिमा से पवित्र वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर लेना सम्भव नहीं है ! उफ, तुममें कितना झूठा अभिमान है, अपने ऊपर कैसा अचल विश्वास है ! तुम्हें मुझपर विश्वास नहीं होता ? तो जाओ, नव-दम्पति आज प्रातःकाल के समय आ गये हैं, उनको बधाई दे आओ—जाओ, तुम अपनी आँखों से ही अपने प्रेमी, नहीं अपने दास को दूसरी स्त्री से प्रणय-क्रीड़ा करते देख आओ !”

“क्या वे आ गये ?” चित्रलेखा उठ खड़ी हुई। उसका शरीर काँप रहा था—उसका मुख इवेत हो गया था। उसने पाटलिपुत्र की ओर देखा, “क्या वे लौट आये ? योगी, तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ—तुम यह कह दो कि तुमने जो कुछ कहा वह भूठ है !”

“कह दूँ कि भूठ है ? हा : हा : हा : सत्य को भूठ कह दूँ ? जाओ ! जाओ ! तुम स्वयम् देख आओ !”

चित्रलेखा बैठ गई, “नहीं ! सब समाप्त हो गया, अब न जाऊँगी—जाने से लाभ ? मेरा धन लुट गया ।” चित्रलेखा के स्वर में करुणा थी ।

कुमारगिरि चित्रलेखा के निकट खिसक आये, “सब समाप्त हो गया ? कहीं कुछ समाप्त भी होता है, एक बात का समाप्त होना दूसरी बात का आरम्भ होना है । समाप्त कैसे हो गया देवि चित्रलेखा ?” कुमारगिरि का स्वर कोमल हो गया था—उसमें एक प्रकार के मृदुल कम्पन का समावेश हो गया था । “तुम जानती हो मैं तुमसे प्रेम करता हूँ । और तुम भी मुझसे यदि प्रेम नहीं करतीं तो मुझसे घृणा भी नहीं करतीं । तुम मेरे जीवन में आना चाहती हो—अभी तक तुम नहीं आ सकीं केवल वीजगुप्त के कारण । तुमने उसके जीवन को दुःखमय बनाया—उसने तुम्हारे जीवन को दुःखमय बनाया । वीजगुप्त ने एक आधार पा लिया, तुम्हें भी आधार न ढूँढ़ना पड़ेगा, देवि चित्रलेखा, मैं तुमसे प्रेम करता हूँ !” कुमारगिरि ने चित्रलेखा का हाथ पकड़ लिया ।

चित्रलेखा ने अपना हाथ कुमारगिरि के हाथ में बिना किसी विरोध के दे दिया—उसने अपना सिर उठाकर कुमारगिरि की आँखों से अपनी आँखें मिला दीं ।

कुमारगिरि कहता ही गया, “प्रेम ! प्रेम ही मेरा धर्म हो गया है । तुम मेरे जीवन में आ गयी हो, तुम मुझे प्रेम की दीक्षा देने आई हो । आओ ! हम तुम एक हो जायें ।”

कुमारगिरि का मुख भुका—चित्रलेखा का मुख कुछ ऊपर उठा । दोनों के अधर मिल गये—काफी देर तक दोनों के अधर मिले रहे ।

कुमारगिरि पागल की तरह बकने लगे, तुम मुझे डुबाने के लिए आई हो मैं भी डूबने को तैयार हूँ ! चलो, कितना सुख है, कितनी हल-

चल है ! मेरी आराध्य देवि ! मेरी प्राणेश्वरी ! आज तुम्हारे योवन के अथाह सागर में डूबने आया हूँ” —कुमारगिरि के नेत्र बन्द हो गये थे—चित्रलेखा के नेत्र भी बन्द हो गये थे। दोनों ने एक दूसरे को आलिंगन पाश में बाँध लिया था।

चित्रलेखा कह उठी, “तो फिर ऐसा ही हो !”

X

X

X

जब प्रातःकाल चित्रलेखा की आँख खुली, वह उद्धिग्न थी। वीजगुप्त—वीजगुप्त ने उसे छोड़ दिया। यह भावना उसके लिए असह्य थी। उसका संसार अन्धकारमय था, उसे रह-रहकर, अपने ऊपर क्रोध आ रहा था। उसने वीजगुप्त को छोड़ा ही क्यों था।

उस समय कुमारगिरि सो रहे थे, कुमारगिरि का मुख विकृत हो रहा था—संयम को एक क्षण में ही तोड़ देने वाली वासना ने उनके तेजोमय मुख-मण्डल पर एक धुंधलेपन का आवरण डाल दिया था। चित्रलेखा कुछ देर तक एकटक कुमारगिरि की ओर देखती रही—इसके बाद वह एकाएक अकारण ही काँप उठी। उसे वहाँ अधिक देर तक रुकने का साहस न हुआ, वह बाहर चली आई। उस व्यक्ति का मुख, जिसके साथ रात भर उसने भोग-विलास किया, उसे इतना भयानक तथा घृणोत्पादक व्यां लग रहा था।—इसपर उसे आश्चर्य हुआ।

विशालदेव उस समय उपासना समाप्त कर रहा था। चित्रलेखा को देखकर उसने नमस्कार किया, “देवि का मुख आज इतना उतरा हुआ क्यों है ?”

“रात भर मैंने भयानक स्वप्न देखे हैं !” चित्रलेखा मुसकरा दी, “उन स्वप्नों ने मुझे उद्धिग्न बना दिया।”

“आज अभी तक गुहदेव कुटी के बाहर नहीं आये ।”

“वे अभी तक समाधिस्थ हैं !”

“समाधिस्थ हैं !” आश्चर्य के साथ विशालदेव ने कहा, “आज पहिली बार गुरुदेव ने अपने जीवन का नियम तोड़ा है।”

थोड़ी देर तक दोनों मौन रहे, इसके बाद विशालदेव ने कहा, “देवि चित्रलेखा ! क्या मैं आपके उन स्वप्नों के सम्बन्ध में अधिक पूछ सकता हूँ ?”

“इतना ही जान लेना यथेष्ट होगा कि वे स्वप्न मेरे गत-जीवन से सम्बद्ध हैं।”

“गत-जीवन से सम्बद्ध हैं ?” विशालदेव ने कुछ सोचा, “देवि, यदि आप उचित समझें तो मैं आर्य वीजगुप्त का पता लगा आऊँ—सम्भव है कि वे आ गये हों !”

“वे आ गये हैं, इतना मैं जानती हूँ”, चित्रलेखा का स्वर शुष्क हो गया, “पर इससे क्या ? उनके आने से अथवा न आने से मुझे कोई प्रयोजन नहीं !”

विशालदेव ने चित्रलेखा को देखा, “देवि ! तुम बड़ी विचित्र हो—तुम्हें समझना बड़ा कठिन है। अभी उस दिन तुम यहाँ से वीजगुप्त के पास जाना चाहती थीं।”

चित्रलेखा का मुख लाल हो गया, “हाँ, उस दिन मैं जाना चाहती थी पर आज नहीं जाना चाहती। मेरे व्यक्तिगत जीवन के सम्बन्ध में तुम्हारे लिए इतनी उत्सुकता दिखाना कहाँ तक उचित है, तुमने इस पर कभी विचार भी किया है ?”

विशालदेव का सिर भुक गया—उसने धीमे स्वर में कहना आरम्भ किया, “ठीक कहती हो देवि ! पर तुम्हारे व्यक्तिगत जीवन में उत्सुकता दिखाने का अर्थ होता है अपने गुरु के जीवन में उत्सुकता दिखाना, और यह मेरे लिए स्वाभाविक तथा उचित है। देवि चित्रलेखा ! तुम अच्छी तरह से जानती हो कि यहाँ तुम्हारी उपस्थिति इस कुटी की संयम-पूर्ण शान्ति को नष्ट कर रही है। यह आश्रम एक कुल के समान है जहाँ के प्रत्येक व्यक्ति को दूसरे के उचित तथा अनुचित कार्यों में टीका करने का ही नहीं वरन् हस्तक्षेप तक करने का अधिकार है !”

“मैं इस बात को मानने को बाध्य नहीं हूँ ।”

“न सही । फिर भी मैं आज वीजगुप्त के यहाँ जाऊँगा—केवल अपने गुरुभाई श्वेतांक से मिलने के लिए । देवि ! मैं फिर प्रार्थना करता हूँ कि एक बार तुम और विचार करो, तुम हम लोगों पर दया करो !”

चित्रलेखा हँस पड़ी, “दया ! किसपर दया करने को कह रहे हो और किससे दया करने को कह रहे हो ? तुम अधिक से दया की आशा करते हो—तुम संहार-कर्ता से निर्माण कराना चाहते हो ? भूलते हो ! भूलते हो !” इतना कहकर चित्रलेखा वहाँ से चली गई ।

दोपहर के समय विशालदेव नगर से लौट आया । चित्रलेखा उसकी प्रतीक्षा कर रही थी । इतना सब कह चुकने के बाद—अपने निर्गम्य के बाद भी वह वीजगुप्त के सम्बन्ध में जानना चाहती थी । जिस समय विशालदेव लौटा उस समय चित्रलेखा कुटी के बाहर बटवृक्ष के नीचे लेटी हुई थी । विशालदेव को देखते ही वह उठकर बैठ गयी ।

विशालदेव सीधे चित्रलेखा के पास आया “देवि चित्रलेखा, मैं बतला दूँ कि आर्य वीजगुप्त से नहीं मिला, मैं केवल श्वेतांक से मिल कर लौट आया हूँ । मैं अधिक देर तक वहाँ ठहरा भी नहीं क्योंकि श्वेतांक आर्य मृत्युञ्जय के यहाँ जा रहा था—मैं भी उसके साथ वहाँ तक बातें करता हुआ गया । इसके बाद वह भीतर चला गया और मैं लौट आया ।”

चित्रलेखा ने पूछा, “श्वेतांक ने मेरे विषय में भी तुमसे कुछ पूछा ?”

“हाँ ! तुम्हारे स्वास्थ्य तथा कुशल-क्षेम के विषम में वह मुझसे पूछता रहा । वह जल्दी मैं था—नहीं तो वह यहाँ आता भी । एक बात और बतलाऊँ—शायद तुम्हें आश्चर्य हो, श्वेतांक यशोधरा से प्रेम करता है—और वह उससे विवाह करना चाहता है !”

चित्रलेखा चौंक उठी, “श्वेतांक यशोधरा से विवाह करना चाहता है ? मेरा तो ऐसा अनुमान था कि बीजगुप्त से यशोधरा का विवाह हो गया है !”

इस बार विशालदेव को आश्चर्य हुआ, “बीजगुप्त से यशोधरा का विवाह हो गया, यह किस प्रकार अनुमान कर लिया ? श्वेतांक ने यह तो कहा था कि बीजगुप्त यशोधरा की ओर आकर्षित अवश्य हुए थे—पर उसका विश्वास है कि बीजगुप्त यशोधरा से विवाह कभी न करेंगे, बीजगुप्त का तुम्हारी ओर अनुराग स्थायी है ।”

चित्रलेखा उठ खड़ी हुई, “धन्यवाद ! विशालदेव, जो कटु शब्द मैंने तुमसे कहे हैं उनके लिए तुम मुझे क्षमा करना । मैं आज यहाँ से चली जाऊँगी इतना विश्वास रखना ।”

चित्रलेखा सीधे कुटी के अन्दर चली गयी । विशालदेव चित्रलेखा के इस व्यवहार को न समझ सका—वह कह उठा, “बड़ी विचित्र स्त्री है ।”

कुमारगिरि उस समय लेटे हुए चित्रलेखा के सम्बन्ध में ही सोच रहे थे । उनका चित्त उद्विग्न था, चित्रलेखा को देखते ही वे पागल की तरह उसकी ओर यह कहते हुए बढ़े, “अभी तक तुम कहाँ थीं मेरी रानी—आओ ! आओ !” पर चित्रलेखा के नेत्रों से अपने नेत्रों के मिलने के साथ ही उनका पागलपन दूर हो गया । चित्रलेखा के नेत्र जल रहे थे—उनमें वृणा, क्षोभ और ग्लानि के भावों का सम्मिश्रण था—उसने तड़पकर कहा “नीच और झूटे पशु ! अलग रहो ।”

कुमारगिरि हट गये, चित्रलेखा ने कहा, “तुमने मुझे धोखा दिया—वासना के कीड़े ! तुम मुझसे झूठ बोले ! तुम्हारी तपस्या विफल हो जायगी और तुम्हें युगों-युगों नरक में जलना पड़ेगा । मैं जाती हूँ—अब तुम मुझे रोक न सकोगे ।”

कुमारगिरि ने साहस किया, “मैंने जो कुछ किया तुम्हारे प्रेम में अन्धा होकर किया ।”

“वासना के कीड़े ! तुम प्रेम क्या जानो ? तुम अपने लिए जीवित हो—ममत्व ही तुम्हारा केन्द्र है—तुम प्रेम करना क्या जानो ? प्रेम बलिदान है—आत्म-त्यग है, ममत्व का विस्मरण है । तुम्हारी तपस्या और तुम्हारा ज्ञान—तुम्हारी साधना और तुम्हारी आराधना—यह सब भ्रम है, सत्य से कोसों दूर है । तुम अपनी तुष्टि के लिए गृहस्थ आश्रम की बाधाओं से कायरता-पूर्वक संन्यासी का ढोंग लेकर विश्व को धोखा देते हुए मुख मोड़ सकते हो—तुम अपनी वासना को तुष्ट करने के लिए मुझे धोखा दे सकते हो—और फिर भी तुम प्रेम की दुहार्द देते हो ! ”

कुमारगिरि को यह अपमान असह्य हो गया, वे खड़े हो गये, जाओ नर्तकी—मुझे तुम्हारी आवश्यकता नहीं । तुमने मुझे गिराया और तुम मुझे उठा भी रही हो । तुमने मुझे पराजित किया—मैंने भी तुम्हें पराजित किया । तुम मुझसे क्या कहती हो ? पहले अपने को देखो; अपने मुख पर पाशविकता की छाया को देखने में तुम समर्थ नहीं हो सकोगी—इतना मैं जानता हूँ । जाओ, अपने साथ अपना अभिशाप लेती जाओ ।” कुमारगिरि आवेश में कौपने लगे थे—वे बाहर चले गये ।

इक्ष्मीसवाँ परिच्छेद

मृत्युञ्जय के यहाँ से लौटकर श्वेतांक ने बीजगुप्त से कहा, “योगी कुमारगिरि का शिष्य विशालदेव आज मुझसे मिला। वह कह रहा था कि देवि चित्रलेखा अच्छी तरह से हैं और उनका स्वास्थ्य अच्छा है।”

बीजगुप्त ने कोई उत्तर न दिया।

श्वेतांक ने फिर पूछा, “क्या मेरे लिए यह उचित न होगा कि मैं स्वामिनी को जाकर देख आऊँ ?”

“नहीं” बीजगुप्त ने कहा, “यह सब व्यर्थ है।”

श्वेतांक ने देखा कि चित्रलेखा की बातों से बीजगुप्त की कोई विशेष रुचि नहीं, और उसका माथा ठनका। वह वहाँ से चला गया।

बीजगुप्त की उद्धिग्नता पाटलिपुत्र आकर घटी नहीं, वरन् वह और बढ़ गयी। उसके हृदय में दो भावों में तुमुल युद्ध मचा हुआ था, दो प्रतिमाएँ उसके सामने थीं। चित्रलेखा के चले जाने के बाद उसने अपने जीवन में एक प्रकार के सूनेपन का अनुभव किया था—और वह शूनापन उसके लिए असह्य था। उस सूनेपन में यशोधरा चली आई। अब वह यशोधरा को अपनाना चाहता था—उससे विवाह करना चाहता था। पर एक बार वह यशोधरा को अस्वीकार कर चुका था—इस समय उसी यशोधरा को दान देने के लिए मृत्युञ्जय से कहना उसके लिए बहुत बड़ी पराजय होगी और उसकी आत्मा उस पराजय को स्वीकार करने के लिए तैयार न थी।

बीजगुप्त मौर्य-साम्राज्य की सेना-जनपद का सदस्य था। पाटलिपुत्र आने के बाद राज्य-कार्य में भी उसका मन न लगा।

बीजगुप्त के उर में उस हलचल से प्रेरित एक क्षणिक विरक्ति की भावना बढ़ती जा रही थी। उसने घर से बाहर निकलना छोड़ दिया

था। नगर का विशाल जनरव, उसके उत्सव, उसके आमोद-प्रमोद वीज-गुप्त को काटते थे।

आज श्वेतांक ने चित्रलेखा की बात चलाकर वीजगुप्त के हृदय में एक और हलचल उत्पन्न कर दी। वह उस रात को सो न सका। चित्रलेखा प्रसन्न है—स्वस्थ है। और वीजगुप्त दुखी है। कैसी विषमता—कैसा भ्रम! किर पराजय ही सही, यशोधरा से विवाह करना ही होगा। अपने जीवन के सूनेपत को दूर करके रहना ही होगा।

श्वेतांक ने वीजगुप्त के स्वर में, उसकी मुद्रा में तथा चित्रलेखा की ओर से वीजगुप्त की उदासीनता में प्रथम बार उस सत्य का आभास देखा जिसको अभी तक वह न देखने की कोशिश कर रहा था। उस रात को वह भी न सो सका।

प्रातः हुई, वीजगुप्त उस दिन अधिक प्रसन्न था। उसने निश्चय कर लिया था कि वह मृत्युञ्जय से यशोधरा के विवाह के विषय में बातचीत करेगा। वह बाहर आया, आज प्रथम बार उसके मुख पर वह प्राकृतिक मुसकराहट दिखलाई दी जिसका वीजगुप्त अभ्यस्त था। जलपान करने को वह बैठा—श्वेतांक वहाँ न था। उसने परिचारिका से श्वेतांक को बुलाने को कहा।

श्वेतांक आया। उसका मुख पीला था—यह स्पष्ट था कि वह गहरी चिन्ता से पीड़ित है। वीजगुप्त ने कहा, “श्वेतांक! तुम्हारा स्वास्थ्य अच्छा नहीं है क्या?”

श्वेतांक ने सिर झुकाए हुए उत्तर दिया, “स्वामी, स्वास्थ्य तो ठीक है, पर मानसिक स्थिति अच्छी नहीं है।”

“क्या बात है?”

श्वेतांक थोड़ी देर तक मौन रहा—उसके बाद उसने अपना सिर उठाया, “स्वामी! आपकी मुझपर इतनी कृपा रही है—आप ही मेरा कल्याण कर सकते हैं।”

वीजगुप्त हँसने लगा, “तुम जानते ही हो श्वेतांक, तुम मेरे भाई

के समान हो। जो कुछ मेरे वश में है मैं तुम्हारे लिए वह करने को तैयार हूँ !”

मैं जानता हूँ और इसीलिए स्वामी से प्रार्थना करने का साहस हो रहा है। स्वामी! मैं सामन्त मृत्युञ्जय की कन्या यशोधरा का पाणि-ग्रहण करना चाहता हूँ !”

बीजगुप्त चौंक उठा—उसे ऐसा लगा मानो हजारों बिच्छुओं ने एक साथ ही उसके शरीर में हजार डंक चुभो दिये हों। कुछ खण्डों के लिए वह विमूढ़-सा श्वेतांक की ओर देखता ही रह गया, “क्या कहा? यशोधरा का तुम पाणि-ग्रहण करना चाहते हो? उसमें मेरी सहायता की क्या आवश्यकता?”

“स्वामी यह प्रस्ताव आर्य मृत्युञ्जय के सामने रखवें !”

“तुम जानते हो श्वेतांक कि मृत्युञ्जय ने उसके पाणि-ग्रहण का प्रस्ताव मुझसे किया था—और मैंने उस समय चित्रलेखा के कारण उस प्रस्ताव को ठुकरा दिया था। तुम यह भी जानते हो कि चित्रलेखा मेरे जीवन से निकल गई है, और मैं यशोधरा की ओर यथेष्ट आकर्षित हूँ !”

“जानता हूँ स्वामी! पर यह नहीं जानता हूँ कि स्वामी के हृदय में यशोधरा के पाणि-ग्रहण की बात उठ सकती है।”

“नहीं—जो कुछ तुम कह रहे हो वह नहीं सम्भव है। मैं यशोधरा से प्रेम करने लग गया हूँ—आज रात को ही मैंने यशोधरा से विवाह करने का निश्चय कर लिया है।” बीजगुप्त उद्धिङ्गन हो गया, उसका स्वर एक तीव्र गाम्भीर्य से भर गया, “तुम मुझसे क्या करने को कह रहे हो श्वेतांक! क्या इतनी वेदना, इतना दुःख और इतनी हलचल मेरे लिए काफी नहीं है? क्या तुम चाहते हो कि मैं अपना जीवन नष्ट कर दूँ? नहीं श्वेतांक! यह असम्भव है। मैं यशोधरा से विवाह करूँगा—इतना समझ लो।”

श्वेतांक की आँखों में आँसू भर आये। उसने बीजगुप्त के सामने

हाथ जोड़ दिये, “स्वामी ! मुझे क्षमा करो ! मैं अपराधी हूँ, मुझे क्षमा करो ! मैं अपने अधिकार से बाहर चला गया, मुझे क्षमा करो ! स्वामी, तुम्हारा हृदय बड़ा विशाल है—तुम आदर्श हो, मुझे क्षमा करो ! ”

बीजगुप्त चिल्ला उठा, “मुझे पागल मत बनाओ श्वेतांक ! जाओ, यहाँ से चले जाओ, मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ तुम चले जाओ ! ”

श्वेतांक धीमे-धीमे वहाँ से चला गया ।

बीजगुप्त ने अपना हाथ अपने सर पर मारा, “हाय रे भाग्य !” इसके बाद वह स्वगत कह उठा, “नहीं ! नहीं ! श्वेतांक, यह नहीं हो सकता । मैं विवाह करूँगा—मैं विवाह करूँगा ! क्या मुझे सुख से रहने का अधिकार नहीं है ? ”

बीजगुप्त उठकर खड़ा हो गया, “मैं अभी जाऊँगा ! मेरे निर्णय में बाधा डालने वाला कोई नहीं है, मैंने निश्चय कर लिया है कि मैं यशोधरा से विवाह करूँगा—अब उस निश्चय को बदलना असम्भव है ।” बीजगुप्त ने रथ मँगवाया ।

वह फिर सोचने लगा, “पर श्वेतांक ! श्वेतांक को क्या अधिकार है कि वह यशोधरा से प्रेम करे ? क्या वह नहीं जानता कि मैं यशोधरा की ओर आकृष्ट हूँ ।” बीजगुप्त का सारा शरीर जल रहा था, उसका कण्ठ सूख गया था । उसने एक गिलास ठंडा जल पिया—उसकी उद्विग्नता कम हो गई, उसका मस्तिष्क कुछ शान्त हुआ, “पर इसमें श्वेतांक का क्या अपराध ! उसका प्रेम करना स्वाभाविक ही है । वह युवा है, उसके भी रक्त और मांस है, सब प्राकृतिक प्रेरणायें हैं । और फिर वह क्या जाने कि मेरा चित्रलेखा के प्रति प्रेम मर गया ! ”

बीजगुप्त की विचार-धारा ने पलटा खाया, “मेरा चित्रलेखा के प्रति प्रेम मर गया ? यह क्यों ? मैं कितना निर्बल हूँ कि मैं एक स्त्री से प्रेम कर के अब दूसरी स्त्री से प्रेम कर रहा हूँ ! क्या वास्तव में प्रेम अस्थायी है ! ”

बीजगुप्त बड़े असमंजस में पड़ गया। वह यह मानने को तैयार न था कि प्रेम स्थायी है—यद्यपि वह स्वयम् इस बात को अनुभव कर रहा था। “नहीं, प्रेम अस्थायी नहीं है? फिर मैं यह सब क्यों करने जा रहा हूँ? क्या चित्रलेखा से बदला लेने के लिए? नहीं!”—चित्रलेखा के विषय में उसके हृदय में कोई बुरी भावना नहीं थी।

रथ द्वार पर आ गया था। बीजगुप्त यशोधरा के भवन की ओर चल दिया। फिर भी उसकी विचार-शृंखला टूटी नहीं—“क्या संयम के यही अर्थ हैं—क्या संसार में अपनापन ही सब कुछ है? तो फिर मनुष्य में और पशु में भेद क्या है? प्रत्येक प्राणी अपने लिए जीवित है—प्रत्येक व्यक्ति ममत्व-भाव से प्रेरित होकर काम करता है। फिर मुझमें और संसार के अन्य प्राणियों में भेद कौसा? यशोधरा से मेरे विवाह का क्या परिणाम होगा? एक व्यक्ति का जीवन नष्ट हो जायगा—और वह व्यक्ति मेरा प्रिय—भाई के समान श्वेतांक है। मैं स्वयम् अपने सिद्धान्तों से गिरँगा। और क्या मैं यशोधरा से प्रेम भी कर सकूंगा? अभी मैं उद्विग्न हूँ—अभी अपने दुख को दूर करने के लिए मैं यशोधरा से विवाह किये लेता हूँ! पर भविष्य में? नहीं! मुझे कोई अधिकार नहीं कि मैं विवाह करूँ। मुझे कोई अधिकार नहीं कि मैं श्वेतांक का जीवन दुःखमय बनाऊँ। मैंने अपना पथ निर्धारित कर लिया था—सोच समझकर। अब मुझे सफलता मिले अथवा असफलता—सुख मिले अथवा दुख, मुझे अपने मार्ग पर ही रहना चाहिए। दूसरों के सुख में बाधक होना—केवल अपने सुख की आशा पर कायरता है, नहीं नीचता है। मैं अन्याय कर रहा हूँ, दूसरों के साथ और स्वयम् अपने साथ भी। हमारे हिस्से में सुख और दुःख दोनों ही पड़े हैं—हमारा कर्तव्य है कि हम दोनों को ही साहस-पूर्वक भोगें।”

रथ उस समय तक मृत्युञ्जय के द्वार पर पहुँच चुका था। बीजगुप्त ने नृत्यञ्जय को सूचना करवाई। मृत्युञ्जय बाहर आये। कुशल-क्षेम के

बाद मृत्युञ्जय ने रुद्धा, “आर्य वीजगुप्त ने किस कारण मेरे घर को पवित्र करने का कष्ट उठाया ?”

वीजगुप्त ने कुछ देर तक सोचकर कहा, “आर्य मृत्युञ्जय ! मैं आपके सामने आपकी कन्या के विवाह का प्रस्ताव लेकर उपस्थित हुआ हूँ ।”

मृत्युञ्जय के मुख पर एक मुस्कराहट दौड़ गयी, “आर्य वीजगुप्त, आप कहिये !”

वीजगुप्त मृत्युञ्जय की मुस्कराहट का अर्थ समझ गया—वह भी मुस्कराया, “आर्य मृत्युञ्जय, मैं अपने सम्बन्ध में कुछ नहीं कहना चाहता । मैं अपने सम्बन्ध में पहिले ही कह चुका हूँ । मैं यह प्रस्ताव लेकर उपस्थित हुआ हूँ कि आप अपनी कन्या का विवाह श्वेतांक से कर दें । श्वेतांक कुलीन है, सुन्दर है और सभ्य तथा शिक्षित है—वह वास्तव में आपकी कन्या के लिए योग्य वर होगा—शायद मुझसे भी योग्य ।”

इस प्रस्ताव पर मृत्युञ्जय को आश्चर्य हुआ । मृत्युञ्जय का अनुमान था कि वीजगुप्त स्वयम् अपने विवाह का प्रस्ताव करेंगे—श्वेतांक के विषय में प्रस्ताव पर वे अवाक्-से रह गये । कुछ देर तक मौन रह-कर उन्होंने कहा, “आर्य वीजगुप्त ! श्वेतांक योग्य है, पर श्वेतांक सम्पन्न पिता का पुत्र नहीं है । वह निर्धन है, ऐसी अवस्था में मैं श्वेतांक के सम्बन्ध में प्रस्ताव पर विचार तक करने में असमर्थ हूँ ।”

इस बार वीजगुप्त को आश्चर्य हुआ, “पर आर्य मृत्युञ्जय ! आप तो अतुल धन-राशि के स्वामी हैं, और आपके यशोधरा के सिवा कोई सन्तति भी नहीं है ।”

मृत्युञ्जय हँस पड़े “आर्य वीजगुप्त ! मेरी सम्पत्ति पर मेरी कन्या का कोई अधिकार नहीं, उसका अधिकारी मेरा दत्तक पुत्र होगा । आर्य वीजगुप्त, आप स्वयम् क्यों नहीं विवाह करते ?”

“नहीं मैं विवाह न करूँगा आर्य मृत्युञ्जय ! क्या श्वेतांक से यशोधरा का विवाह एकदम असम्भव है ?”

मृत्युञ्जय ने धीरे से कहा, “हाँ आर्य बीजगुप्त ! श्वेतांक को योग्य तथा कुलीन वर समझते हुए मैं यशोधरा का उसके साथ उस समय तक विवाह नहीं कर सकता जब तक वह निर्धन है !”

बीजगुप्त थोड़ी देर तक कुछ सोचता रहा—इसके बाद उसने कहा, “आर्य मृत्युञ्जय ! मैं श्वेतांक को अपना दत्तक पुत्र बना रहा हूँ। इस प्रकार वह मेरी सम्पत्ति का अधिकारी होगा। ऐसी स्थिति में तो आपको कोई आपत्ति न होनी चाहिये ।”

“नहीं आर्य बीजगुप्त, यह असम्भव है। तुम्हारी अभी अवस्था ही क्या है ? तुम बहुत सम्भव हैं कि निकट भविष्य में विवाह कर लो—तब तुम्हारा पुत्र ही तुम्हारा उत्तराधिकारी होगा !”

“आप ठीक कहते हैं आर्य मृत्युञ्जय ! यद्यपि मैं इस समय विवाह न करने पर तुला हुआ हूँ फिर भी मनुष्य की मति का क्या छिकाना ! पर मैं चाहता हूँ कि श्वेतांक का और यशोधरा का विवाह हो जाय, इस विवाह से दोनों सुखी होंगे। इसके लिए मैं बड़े से बड़ा त्याग करने को प्रस्तुत हूँ। आर्य मृत्युञ्जय ! मैं अपनी सारी सम्पत्ति श्वेतांक को दान दूँगा ।”

मृत्युञ्जय मानो आसमान से नीचे गिरे। “तुम नहीं जानते आर्य बीजगुप्त तुम क्या कह रहे हो। तुम्हारा चित्त स्वस्थ नहीं है !”

“आप मेरी कुछ चिन्ता न करें—मैंने आपके सांमने कह दिया है कि मैं अपनी सारी सम्पत्ति श्वेतांक को दान कर दूँगा। आप इसके साक्षी हैं। रही सामंत की पदवी की बात—इसमें राज्याज्ञा की आवश्यकता होगी, उसका भी मैं समाट से आज मिलकर प्रबन्ध कर लूँगा। अब आपको कोई आपत्ति न होनी चाहिये !”

मृत्युञ्जय ने बीजगुप्त की ओर आँखें फाड़कर देखा, “मैं एक बार फिर तुम्हें अवसर देता हूँ—अपना प्रस्ताव स्वीकृत हो जाने के बाद फिर तुम पीछे न हट सकोगे !”

बीजगुप्त ने एक-एक शब्द पर जोर देते हुए कहा, “आर्य मृत्युञ्जय ! मैं जो कुछ कह चुका हूँ करूँगा । मैं मनुष्य हूँ—वात से फिरना मैं नहीं जानता ।”

“तो फिर तुम्हारा प्रस्ताव स्वीकृत है !” मृत्युञ्जय ने काँपते हुए स्वर में कहा ।

बीजगुप्त उठ खड़े हुए, “मैं जाता हूँ, दानपत्र तथा पदवी के लिए राज्याज्ञा का प्रवन्ध आज ही हो जायगा—विलम्ब की कोई आवश्यकता नहीं । विवाह की तिथि आप नियत कर लें !”

मृत्युञ्जय ने उठते हुए कहा, “आर्य बीजगुप्त ! मैंने संसार को देखा है । मैं कहता हूँ आप मनुष्य नहीं हैं देवता हैं ।” मृत्युञ्जय के नेत्रों में आँसू छलक रहे थे ।

बीजगुप्त अपने भवन पहुँचा । वह श्वेतांक के भवन में पहुँचा, श्वेतांक सो रहा था । उसकी चादर भीगी हुई थी, उसके नेत्रों से अश्रु अभी सूखे न थे । बीजगुप्त ने श्वेतांक को उठाया—श्वेतांक उठ पड़ा, स्वामी, क्या आज्ञा है ?”

“तुम मुझे अब स्वामी न कहना सामन्त श्वेतांक !”

विस्कारित नेत्रों से देखते हुए श्वेतांक ने कहा, “यह आप क्या कह रहे हैं ?”

“मैं जो कुछ कह रहा हूँ वह ठीक है । सुनो ! मैंने तुम्हारे विवाह का प्रस्ताव आर्य मृत्युञ्जय से किया था—उन्होंने कुछ आपत्ति की । उस आपत्ति को दूर करने के लिए मैंने अपनी सम्पत्ति तथा पदवी का दान उनके सामने तुम्हें कर दिया । अब उनको यशोवरा का तुम्हारे साथ विवाह करने में कोई आपत्ति नहीं है !”

श्वेतांक थोड़ी देर तक निश्चल तथा विमूढ़-सा खड़ा हुआ बीजगुप्त की ओर देखता रहा—इसके बाद वह रो पड़ा, “नहीं ! नहीं ! स्वामी, मुझे यह स्वीकार नहीं । मैं किज़ना पापी हूँ—स्वामी, मुझे क्षमा करो—मैं जाता हूँ मुझे क्षमा करो ! मैंने आपके जीवन को नष्ट किया

है—आप मुझ नराधम पर यह दया क्यों कर रहे हैं—मुझे स्वीकार नहीं है।” वह वीजगुप्त के चरणों पर गिर पड़ा !

वीजगुप्त ने श्वेतांक को उठाया, “श्वेतांक—जो कुछ होना था वह हो चुका । अब यदि तुम्हारे हृदय में मेरे प्रति कुछ भी स्नेह है तो जो कुछ मैं कर रहा हूँ स्वीकार करो । संसार के सामने मुझे भूठा न बनने दो । मैंने इस वैभव को काफी भोगा है—अब चित्त फिर गया है । इस वैभव को तुम भोगो । मैं तुमसे प्रार्थना करता हूँ, तुम अस्वीकार न करो । चलो दानपत्र तथा पदवी के लिए राज्याज्ञा का प्रबन्ध करना है !”

बाईसवाँ परिच्छेद

चित्रलेखा लौट आई, पर वह बीजगुप्त से न मिली। बीजगुप्त से मिलने का उसको साहस न था। वह बीजगुप्त के प्रति अपराधिनी थी—उसने यह अनुभव किया; वह सीधे अपने स्थान को गई।

चित्रलेखा ने अपने ऐश्वर्य-सदन में ही साधना का जीवन व्यतीत करना आरम्भ किया। इस जीवन में उसने शान्ति का अनुभव किया—वह पश्चात्ताप की अग्नि में सहर्ष जलने को तैयार थी। उसे अपने से ही घृणा हो गयी। उसका कार्य-क्रम दिन-रात का रोना था।

वह बीजगुप्त से प्रेम करती थी—बीजगुप्त के प्रति उसके हृदय में कितना गहन प्रेम था, उसने उतने दिनों के वियोग के बाद अनुभव किया। पर अब वह भ्रष्ट हो चुकी थी, कुमारगिरि के पागलपन और मृत्युता के एक छोटे-से क्षण में आह्म-समर्पण करके। वह बीजगुप्त से इतना प्रेम करती थी कि वह बीजगुप्त को धोखा न देना चाहती थी। उसने अपराध किया था—उस अपराध के फ़ल-स्वरूप उसे निराशा-पूर्ण वेदना की असह्य ज्वाला में जलना ही इष्ट था। जितना अधिक वह जलती थी उतना ही अधिक उसको सुख मिलता था—जितना अधिक वह रोती थी उतनी ही उसे शान्ति मिलती थी।

इस प्रकार चित्रलेखा को एक मास हो गया। एक दिन वह बैठी हुई रो रही थी कि दासी ने उसको सूचना दी, “आर्य श्वेतांक आपसे मिलना चाहते हैं।”

वह चौंककर उठ खड़ी हुई। क्या बीजगुप्त ने उसे बुलवाया है ? “कहाँ हैं ? मैं चलती हूँ !”

श्वेतांक अतिथि-भवन में बैठा हुआ चित्रलेखा की प्रतीक्षा कर रहा था। चित्रलेखा को देखकर उसे आश्चर्य हुआ। वह पीली पड़ गयी थी—

उसका सौन्दर्य विकृत हो गया था। वह पहचानी तक नहीं जाती थी, “देवि ! तुम्हारी यह क्या हालत है ?”

“अच्छी तो हूँ—” इतना कहकर चित्रलेखा बैठ गयी।

थोड़ी देर तक दोनों मौन रहे। चित्रलेखा ने पूछा, “आर्य वीजगुप्त तो कुशल-पूर्वक हैं ?”

श्वेतांक के मुख पर दुःख की एक हल्की सी रेखा ढौड़ गयी, “हाँ ! आर्य वीजगुप्त अच्छी तरह से हैं। पर उनमें बहुत बड़ा परिवर्तन हो गया !”

“परिवर्तन हो गया है !” चित्रलेखा का कौतूहल बढ़ गया, “कैसा परिवर्तन ? क्या उन्होंने विवाह कर लिया है ?”

एक रूखी मुसकराहट के साथ श्वेतांक ने कहा, “नहीं, उन्होंने विवाह नहीं किया है, विवाह तो मैं करने जा रहा हूँ। सामन्त मृत्युञ्जय की कन्या यशोधरा से मेरा विवाह होने वाला है, उसी में निर्मंत्रित करने के लिए मैं आया हूँ। पर आर्य वीजगुप्त ने एक बड़ा त्याग किया है—वे देवता हैं। सामन्त मृत्युञ्जय मुझसे अपनी कन्या का विवाह नहीं करना चाहते थे क्योंकि मैं निर्धन था। आर्य वीजगुप्त ने अपनी पदवी तया सारी सम्पत्ति मुझे दान कर दी है। वे पाटलिपुत्र छोड़कर बाहर जाने वाले हैं—केवल मेरे विवाह के लिए ही वे रुके हैं।”

चित्रलेखा का हृदय धड़कने लगा, उसकी आँखों में आँसू भर आये, “क्या वीजगुप्त ने इतना कर डाला ? श्वेतांक ! जानते हो यह एक बड़ा त्याग है। और इन सब की जड़ मैं हूँ। किर भी आर्य श्वेतांक तुम्हें बधाई है। तुम्हारा विवाह कब होगा ?” “अगले सप्तांह रविवार के दिन विवाह-कार्य सम्पन्न होगा।”

“चन्द्रवार को प्रीत-भोज है—उसमें समाट, तथा राज्य के कर्म-चारी और सामन्त आवेंगे। देवि ! प्रीति-भोज में तुम्हारी उपस्थिति आवश्यक है।”

चित्रलेखा ने कहा, “श्वेतांक ! मुझे क्षमा करो। मैं किसी दूसरे

दिन आऊँगी, पर प्रीति-भोज में मैं न आ सकूँगी। मैंने एक दूसरा ही जीवन अपना लिया है—उस उत्सव में मेरा जाना उचित नहीं है।”

“देवि चित्रलेखा ! तुम मुझे भाई कह चुकी हो—यह मेरा अनुरोध है !”

“मैं असमर्थ हूँ—श्वेतांक ! तुम जानते हो कि मेरा निश्चय अमिट होता है। मेरी तुम पर बहिन की ममता है, पर बड़ी बहिन की ममता है। मैं दूसरे दिन आऊँगी।”

“जैसी तुम्हारी इच्छा ! पर एक बात बतला देना उचित होगा। चन्द्रवार की रात को ही आर्य बीजगुप्त देश-पर्यटन को प्रस्थान करेंगे फिर से सोच समझ लो।”

“आर्य बीजगुप्त उसी रात को प्रस्थान करेंगे !” चित्रलेखा कुछ हिचकिचाई, पर एक ही क्षण में उसने दृढ़ता-पूर्वक कहा, “पर इससे मुझको क्या ? मेरा निश्चय अमिट है।”

श्वेतांक उठ खड़ा हुआ, “जैसी इच्छा देवि !”

श्वेतांक का विवाह हो गया—प्रीति-भोज में सम्राट् के साथ अन्य अतिथि आये। उस दिन बीजगुप्त सबका स्वागत कर रहा था। वह सब से हँसकर बातें करता था, पर उसका हृदय जल रहा था। चित्रलेखा की अनुपस्थिति उसे बुरी लगी। अन्तिम बार पाटलिपुत्र छोड़ने के पहले वह चित्रलेखा को देखना चाहता था, पर चित्रलेखा न आयी।

भोजन के बाद सम्राट् ने श्वेतांक को बधाई दी और उसको सामन्त के नाम से सम्बोधित किया। इसके बाद उनकी दृष्टि बीजगुप्त पर पड़ी। बीजगुप्त को बुलाकर सम्राट् ने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया। इसके बाद वे खड़े हो गये, सम्राट् के साथ अन्य अतिथि भी खड़े हो गये, भवन में सन्नाटा छा गया। सम्राट् ने आरम्भ किया, “बीजगुप्त ! तुम एक महान-आत्मा हो। तुमने असम्भव को सम्भव कर दिखाया, तुम मनुष्य नहीं हो, तुम देवता हो, आज भारतवर्ष का सम्राट्, चन्द्रगुप्त मौर्य तुम्हारे सामने मस्तक नमाता है !” इतना कह

कर समाट् चन्द्रगुप्त ने बीजगुप्त के सामने सिर झुका दिया। जितने अतिथि वहाँ पर खड़े थे सब के सिर एक साथ ही झुक गये—स्त्रियों के बीच से हिचकियों के साथ एक दबा हुआ रुदन फूट पड़ा।

बीजगुप्त ने समाट् के सामने झुककर कहा, “महाराज ! मैं इस आदर के सर्वथा अयोग्य हूँ—आज मैं देश-पर्यटन के लिए जा रहा हूँ, एक भिखारी की भाँति—आप मुझे अपना आशीर्वाद दें और विदा दें !”

इतना कहकर बीजगुप्त द्वार की ओर बढ़ा। अतिथि दोनों ओर एक पंक्ति बनाकर खड़े थे—उनके बीच से बीजगुप्त चला। बीजगुप्त के मुख पर एक दैवी मुसकराहट थी—अतिथियों ने उसमें एक तेज देखा। वृद्ध से लेकर बालक तक हाथ जोड़कर खड़े हो गये थे—बीज-गुप्त वैभव तथा शक्ति के उस जमघट में से शान्ति और त्याग की गुरुता के साथ निकल गया।

बाहर बीजगुप्त के सेवक खड़े थे। बीजगुप्त को देखते ही वे रोने लगे—बीजगुप्त एक क्षण के लिए रुका। उसने प्रत्येक व्यक्ति को देखा—इसके बाद उसने कहा, “तुम श्वेतांक को मेरे ही समान समझना—और तुम मुझे भूलने का प्रयत्न करना !”

सेवक और जोर से रोने लगे। कुछ लोगों ने एक साथ ही कहा—“हम आपके साथ चलेंगे !”

बीजगुप्त ने गम्भीर स्वर में कहा, “क्या कहा ? मेरी आज्ञा है कि तुम यहाँ पर रहो। कोई भी व्यक्ति यहाँ से न चले !”

लोग सहमकर पीछे हट गये—बीजगुप्त चल दिया। अर्धरात्रि भीत चुकी थी, नगर में सर्वथा शांति छाई हुई थी। बीजगुप्त धीमी चाल से बढ़ता ही गया। एक भिखारी की भाँति वह पैदल जा रहा था। उसके शरीर पर साधारण व्यक्ति के-से वस्त्र और उसके पास सम्बल-रूप चाँदी की मुछ मुद्राएँ थीं। बीजगुप्त को पैरों की आहट सुनाई दी—धीरे-धीरे वह आहट बढ़ती ही जाती थी ! बीजगुप्त ने पीछे फिरकर देखा—अन्धकार में उसे कुछ दिखलाई न दिया, वह और आगे बढ़ा।

पद-ध्वनि बढ़ती हीं गई—उस अन्धकार से वीजगुप्त की दृष्टि में एक कपड़े से ढकी हुई मूर्ति ने प्रवेश किया, “मेरे देवता !”

वीजगुप्त के पैर रुक गये—उसने पूछा, “तुम कौन ?”

“मेरे देवता ! मेरे देवता !! मुझे धमा करो” इतना कहकर वह मूर्ति वीजगुप्त के चरणों पर गिर पड़ी।

वीजगुप्त ने कर्कश स्वर में कहा, “चित्रलेखा ? मेरे जीवन की अभिशाप—तुम यहाँ क्यों आई—जाओ ! जाओ !!” वह पीछे हट गया। “अब सब समाप्त हो चुका—तुम क्यों आई हो ?”

“अपने देवता की चरण-रज लेने ! अपने देवता की पूजा करने के लिए।” चित्रलेखा खड़ी होगई, “नाथ ! मैंने तुम्हारा जीवन नष्ट कर दिया, मैंने तुम्हें मिटा दिया ! तुम मुझे शाप दो, दण्ड दो, मुझे ताड़ित करो—पर मुझसे घृणा न करो।”

वीजगुप्त का सारा शरीर काँप उठा, उसने हँथे हुए कण्ठ से कहा, “चित्रलेखा, सब समाप्त हो चुका ! तुम्हीं ने सब समाप्त कर दिया—तुम कुमारगिरि की कुट्री छोड़कर मेरे पास न आई—मैं निराश हो गया। अब इस समय मुझे विचलित करने क्यों आई हो—मेरे पास अब कुछ नहीं है, न हृदय में उमंग है, न पास में वैभव ! जाने दो !”

चित्रलेखा ने वीजगुप्त का हाथ पकड़ लिया, “नहीं, मैं तुम्हें अभी न जाने दूँगी मेरे स्वामी ! एक दिन तुम्हें मेरा अतिथि बनकर रहना होगा, यदि जाना हीं है तो कल चले जाना।”

वीजगुप्त ने अपना हाथ छुड़ा लिया, “मेरे सामने से हटो—नर्तकी ! मेरे सामने से हटो। अब तुम मुझे नहीं रोक सकतीं। अपने विनाशकारी कृत्य के परिणाम को तुम देखो और हँसो—जाओ, मुझे जाने दो !” वीजगुप्त आगे बढ़ा।

चित्रलेखा ने वीजगुप्त के पैर पकड़ लिये, “मैं कहती हूँ कि मैं तुम्हें न जाने दूँगी—तुम्हें मेरे साथ मेरे भवन तक चलना होगा।

बींजगुप्त—मेरे नाथ—क्या तुम्हारे हृदय में मेरे प्रति प्रेम मर गया है? बोलो नाथ क्या.....” चित्रलेखा की हिचकियाँ वैध गयीं—वह सिसक-सिसककर रो रही थीं।

बींजगुप्त अपने को सम्भाल न सका, उसने कहा, “हाय रे! यदि प्रेम ही मर जाता तो मैं यह वैभव काहे को छोड़ता? चित्रलेखा, मैं चाहता हूँ कि मेरे हृदय में तुम्हारे प्रति प्रेम मर जाता। पर यह न हो सका—यह न हो सकेगा!” इतना कहकर बींजगुप्त ने चित्रलेखा को उठा कर आलिंगन करना चाहा। पर चित्रलेखा हट गयी, “नहीं मेरे देवता! मेरे शरीर को आप स्पर्श न करें। मैं अपवित्र हूँ, पवित्र हूँ, पापिनी हूँ मेरे देवता! न लिये, आप मेरे भवन को चलिये, मुझे आप पवित्र कीजिए—अपने शाप की अग्नि में तपाकर आप मुझे पवित्र कीजिए।”

“चलो!” बींजगुप्त कह उठा, “चलो चित्रलेखा, संसार में एक तुम्हारी ही बात मैं नहीं टाल सकता। मुझे जितना गिराना चाहो गिराओ—पर यह वचन दे दो कि तुम मुझे कल न रोकोगी।”

“मैं वचन देतीं हूँ।”

चित्रलेखा अपने भवन पर पहुँची। उसने बींजगुप्त के शयन का प्रवंध करा दिया—इसके बाद उसने कहा, “नाथ—तुम शयन करो, कल प्रातःकाल वातें करूँगी।” इतना कहकर वह चली गयी। बींजगुप्त अवाक्-सा उसे देखता ही रह गया।

प्रातःकाल चित्रलेखा बींजगुप्त के पास आयी, “स्वामी! मुझे आप अपना चरणामृत दीजिए।”

बींजगुप्त को चित्रलेखा के इस व्यवहार पर आश्चर्य हुआ। “यह क्यों?”

“मैं अपने को पवित्र कर रही हूँ! मेरे स्वामी, मैं अपने मार्ग से विरत हो चुकी हूँ, मैं योगी कुमारगिरि की वासना का साधन बन चुकी हूँ, मैंने अपने शरीर को क्रोध में आकर उसको सौंप दिया है, मैं उस शरीर को पवित्र करना चाहती हूँ।” चित्रलेखा ने अपनी सारी कथा

बीजगुप्त को सुना दी। “अब आप समझ सकते हैं स्वामी कि मैं आपके पास क्यों नहीं आई। आप मुझे क्षमा करें !”

“केवल इतनी-सी बात थी ?” बीजगुप्त हँस पड़ा, “चित्रलेखा ! तुमने बहुत बड़ी भूल की। तुमने मुझे समझने में भ्रम किया। तुम मुझ से क्षमा माँगती हो ? चित्रलेखा ! प्रेम स्वयं एक त्याग है, विस्मृति है, तन्मयता है। प्रेम के प्रांगण में कोई अपराध ही नहीं होता, फिर क्षमा कैसी ! फिर भी यदि तुम कहलाना ही चाहती हो तो मैं कहे देता हूँ—मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ !”

चित्रलेखा बीजगुप्त का चरण पकड़कर बोली, “नाथ तो फिर तुम मुझे स्वीकार करो !”

“यह किस प्रकार संभव है ? देवि चित्रलेखा ! मैं भिखारी हूँ, मैं वैभव त्याग चुका हूँ—अब यह किस प्रकार संभव है ?”

“नाथ ! मेरे पास अतुल धन-राशि है, मैं तुम्हारी हूँ। मेरा धन तुम्हारा है फिर तुम निर्धन कैसे ? फिर तुम अपने को भिखारी क्यों कहते हो ?”

“तुम्हारी सम्पत्ति—तुम्हारी धन-राशि ? यह मेरे काम की नहीं है। मैंने वैभव छोड़ा है उसे अपनाने के लिए नहीं, उसे सदा के लिए छोड़ने के लिए। मैं तुम्हें भी एक भिखारिणी के रूप में स्वीकार कर सकता हूँ !”

चित्रलेखा उठ खड़ी हुई, “तो फिर ऐसा ही हो—संसार में हम दोनों भिखारी बनकर निकल पड़ें। प्रेम और केवल प्रेम हमारा आधार हो ! मेरे देवता ! मैं अपनी सम्पत्ति आज ही दान किये देती हूँ—रात में हम दोनों ही अथाह संसार में प्रेम की नौका पर बैठकर निकल चलें।” चित्रलेखा का मुख-मण्डल चमक उठा, उसके नयनों में एक प्रकार की ज्योति आ गयी थी—उसकी आत्मा प्रकाशमान हो उठी।

बीजगुप्त ने चित्रलेखा का चुम्बन ले लिया—“हम दोनों कितने सुखी हैं !”

उपसंहार

एक वर्ष बाद !

महाप्रभु रत्नाम्बर ने कहा, “वत्स श्वेतांक ! तुम्हारा विवाह हो गया और तुम गृहस्थ हो चुके । अब मुझे बतला सकते हो कि वीजगुप्त और कुमारगिरि इन दोनों में कौन व्यक्ति पापी है ?”

श्वेतांक ने रत्नाम्बर के सामने मस्तक नमा दिया, “महाप्रभु ! वीजगुप्त देवता है । संसार में वे त्याग की प्रतिमूर्ति हैं, उनका हृदय विशाल है । और कुमारगिरि पशु है । वह अपने लिए जीवित है, संसार में उसका जीवन व्यर्थ है । वह जीवन के नियमों के प्रतिकूल चल रहा है, अपने सुख के लिए उसने संसार की वाधाओं से मुख मोड़ लिया है । कुमारगिरि पापी है !”

और वत्स विशालदेव ! तुमने योग की दीक्षा ले ली, और तुम योर्गि हो गये । अब तुम मुझे बतलाओ कि कुमारगिरि और वीजगुप्त इन दो में कौन व्यक्ति पापी है ?”

विशालदेव ने रत्नाम्बर के सामने मस्तक नमा दिया, “महाप्रभु—योगी कुमारगिरि अजित है । उन्होंने ममत्व को वशीभूत कर लिया है, वह संसार से बहुत ऊपर उठ चुके हैं । उनकी साधना, उनका ज्ञान और उनकी शक्ति पूर्ण है । और वीजगुप्त वासना का दास है—उसका जीवन संसार के घृणित भोग-विलास में है । वह पापी है—पापमय संसार का वह एक मुख्य भाग है !”

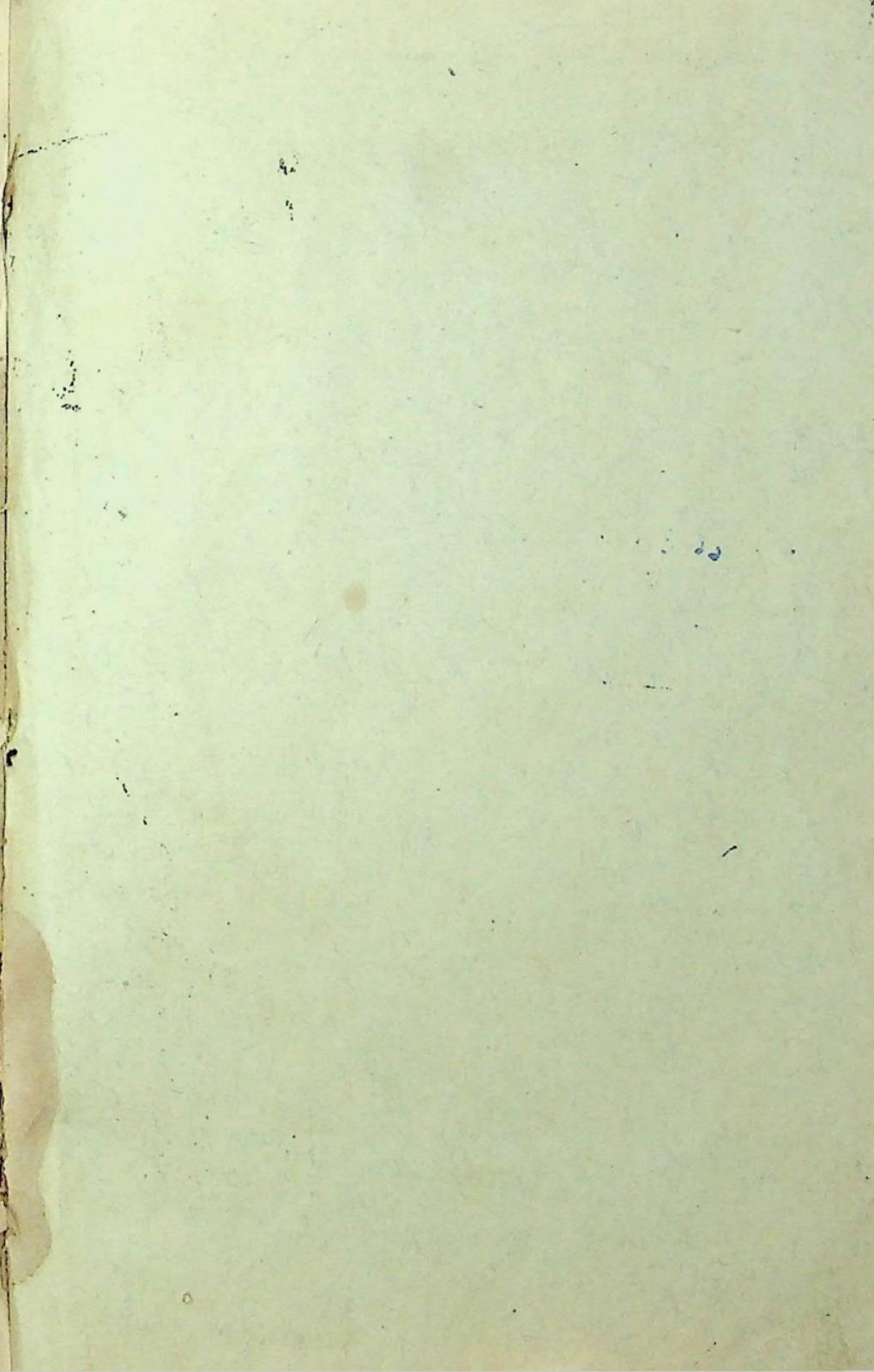
रत्नाम्बर कह उठे, “तुम दोनों विभिन्न परिस्थितियों में रहे और तुम दोनों की पाप की धारणाएँ भिन्न-भिन्न हो गई हैं । तुम लोग जा रहे हो—तुम्हारी विद्या पूर्ण हो चुकी । अब अपना अन्तिम पाठ मुझसे सुने जाओ ।”

“संसार में पाप कुछ भी नहीं है, वह केवल मनुष्य के दृष्टिकोण की विषमता का दूसरा नाम है। प्रत्येक व्यक्ति एक विशेष प्रकार की मनःप्रवृत्ति लेकर उत्पन्न होता है—प्रत्येक व्यक्ति इस संसार के रंगमंच पर एक अभिनय करने आता है। अपनी मनःप्रवृत्ति से प्रेरित होकर अपने पाठ को वह दुहराता है—यही मनुष्य का जीवन है। जो कुछ मनुष्य करता है वह उसके स्वभाव के अनुकूल होता है, और स्वभाव प्राकृतिक है। मनुष्य अपना स्वामी नहीं है, वह परिस्थितियों का दास है—विवश है। वह कर्ता नहीं है वह केवल साधन है। फिर पुण्य और पाप कैसा ?”

“मनुष्य में ममत्व प्रधान है। प्रत्येक मनुष्य सुख चाहता है। केवल व्यक्तियों के सुख के केन्द्र भिन्न होते हैं। कुछ सुख को धन में देखते हैं, कुछ सुख को मदिरा में देखते हैं, कुछ सुख को व्यभिचार में देखते हैं, कुछ त्याग में देखते हैं, पर सुख प्रत्येक व्यक्ति चाहता है; कोई भी व्यक्ति संसार में अपनी इच्छानुसार यह काम न करेगा जिसमें दुःख मिले—यही मनुष्य की मनःप्रवृत्ति है और उसके दृष्टिकोण की विषमता है।

“संसार में इसीलिए पाप की एक परिभाषा नहीं हो सकी—और न हो सकती है। हम न पाप करते हैं और न पुण्य करते हैं, हम केवल वह करते हैं जो हमें करना पड़ता है।”

रत्नाम्बर उठ खड़े हुए, “यह मेरा मत है—तुम लोग इससे सहमत हो या न हो, मैं तुम्हें वाध्य नहीं करता और न कर सकता हूँ। जाओ और सुखी रहो ! यह मेरा तुम्हें आशीर्वाद है।”





26

B

B

A

A

A

B

M

3.4 5/6/81

12

The Jammu & Ka
University Library,
Srinagar.

1. Overdue charge of one anna per-day will be charged for each volume kept after the due date.
2. Borrowers will be held responsible for any damage done to the book while in their possession

